नई दिल्ली
रविवार, 27 सितंबर, 2026, मूल्य-15.00
राष्ट्रीय
वर्ष-8 अंक-49 पृष्ठ- 8
RNI: DELHIN / 2018 / 76679
Postal Reg. No. DL(C)-05/1425/2025-27
License To Post Without Pre Payment No. U(C)-164/2025-27
Magazine Post Reg. No. DL(DS)-31/MP/25-26-27

संडे नवजीवन

Freedom is in Peril, Defend it with all your might Jawaharlal Nehru

देश के 94 हजार सरकारी स्कूल बंद कर बदगुमान सरकारों ने शिक्षा व्यवस्था बिल्कुल बदहाल कर दी है 7

अकालियों की छटपटाहट और भाजपा की डफली 4

यह यूपी, वह यूपी 8

www.navjivanindia.com | @navjivanindia | www.nationalheraldindia.com | www.qaumiawaz.com

एसआईआर को रद्द करें, सीईसी को बर्खास्त करें

'मित्रों', क्या इसमें अब भी शक है कि एसआईआर की प्रक्रिया बहुत बड़ा घोटाला है?

अगर एसआईआर, निर्वाचन आयोग और उसके मुख्य आयुक्त ज्ञानेश कुमार के आचरण को पारदर्शिता के तर्कसंगत पैमाने पर परखा जाए, तो आप उन्हें कितने अंक देंगे? जरा ठहरकर अब तक सामने आए तमाम खुलासों को याद कीजिए। बड़े मीडिया संस्थानों में काम कर रहे मेरे प्रिय मित्रों और कभी के सहयोगियों, एक पल और रुकिए। सोचिए कि क्या आप ईमानदारी से अपने बच्चों को बता पाएंगे कि आपने गलत काम के तमाम सबूतों से आंखें क्यों फेर लीं? क्या अब वह समय आ गया है कि इस कहानी को उसी तरह बताया जाए, जिस तरह आप वास्तव में इसे देखते हैं। – संपादक

ए.जे. प्रबल और हरजिंदर

अगर जरा भी संदेह बचा था कि मतदाता सूचियों के साथ बड़े पैमाने पर छेड़छाड़ हो रही है, तो इंडियन एक्सप्रेस की रितिका चोपड़ा की ताजा पड़ताल से वह दूर हो जानी चाहिए। लेकिन पहले पश्चिम बंगाल में हुए हालिया चुनाव पर लौटते हैं, जो एसआईआर के दूसरे चरण के बाद अप्रैल 2026 में हुए थे।

पश्चिम बंगाल के प्रशासनिक और चुनाव अधिकारियों को अप्रैल 2026 के विधानसभा चुनाव से पहले मुख्य चुनाव आयुक्त ज्ञानेश कुमार की ब्रीफिंग याद है। बताया जाता है कि ब्रीफिंग में ज्ञानेश कुमार ने व्यंग्यात्मक अंदाज में पूछा था, "हाऊ इज द जोश?" यानी जोश कैसा है? वह 2019 की बॉलीवुड फिल्म 'उरी- द सर्जिकल स्ट्राइक' का डॉयलॉग दोहरा रहे थे।

सर्जिकल स्ट्राइक तो हुई ही। उन्होंने चुनाव की निगरानी करने वाले सभी वरिष्ठ अधिकारियों को हटाने का आदेश दिया और उनकी जगह अपनी पसंद के अधिकारियों को नियुक्त कर दिया। खबरों के मुताबिक, 500 से ज़्यादा अधिकारियों को बदल दिया गया, कुछ विधानसभा क्षेत्रों में पुलिस इंस्पेक्टर स्तर तक के अधिकारियों को भी। दूसरे राज्यों से अधिकारियों को लाया गया और केन्द्रीय सुरक्षा बलों की अभूतपूर्व तैनाती की गई।

तब सुनने में आया था कि यह ऐसा व्यक्ति है जो अधिनायकवादी रवैया रखता है और जिसे बिना सवाल किए आदेश मानने से कम कुछ मंजूर नहीं। अब एक्सप्रेस की पड़ताल से पता चला है कि उन्होंने अपने साथी चुनाव आयुक्तों- सुखबीर सिंह संधू और विवेक जोशी की भी नहीं सुनी।

इस साल चार महीनों तक, एक ऐसे विवादास्पद एसआईआर के बीच जिसमें करीब 13 करोड़ भारतीय मतदाताओं के नाम हटाए गए, तीन सदस्यीय आयोग की एक भी बैठक मई और अगस्त 2026 के बीच नहीं हुई। मई के बाद पहली बैठक 9 सितंबर को हुई और वह भी तब, जब संधू और जोशी ने आखिरकार कैबिनेट सचिव टी.वी. सोमनाथन को पत्र लिखकर निर्वाचन सदन में किए गए एक 'अवैध' प्रशासनिक फेरबदल की ओर ध्यान दिलाया।

जोशी ने कैबिनेट सचिव को भेजे नोट में दर्ज किया कि 2025 के मध्य से शुरू होकर एक साल तक, संभवतः 24 जून को शुरू हुए एसआईआर के पहले चरण की शुरुआत के साथ, उन्हें और संधू को आयोग की बैठक से पहले एजेंडा नोट नहीं दिए गए, न ही बैठक के बाद मिनट्स उपलब्ध कराए गए। दोनों मुख्य आयुक्त के बराबर के अधिकारी हैं और वे मिलकर आयोग में बहुमत का प्रतिनिधित्व करते हैं। सितंबर से पहले के 10 महीनों में उन्होंने 14 बार अपनी आपत्तियां और असहमति दर्ज कराई।

चोपड़ा की रिपोर्ट के मुताबिक, एक मौके पर संधू और जोशी ने एक ही दिन में चार बार आपत्ति जताई। उन फैसलों और आदेशों पर सवाल उठाया, जो उनकी जानकारी के बिना किए गए और लागू हुए। संधू ने लिखित शिकायत में कहा कि आयोग ने दो आयुक्तों की लिखित सलाह के विपरीत कार्रवाई की। यानी बहुमत की राय की अनदेखी हुई।

मुख्य चुनाव आयुक्त ने इनमें से किसी भी बात का खंडन नहीं किया है। जाहिर है कि कभी बेहद सम्मानित रही यह संस्था आज न सिर्फ विभाजित है, बल्कि पूरी तरह समझौता कर चुकी है।

लेकिन कहानी यहीं खत्म नहीं होती।

पारदर्शिता कार्यकर्ता अंजलि भारद्वाज ने उस प्रक्रिया का ब्योरा मांगा, जिसके तहत मतदाता सूचियों के 'स्पेशल इंटेंसिव रिवीजन' यानी एसआईआर का फैसला किया गया था। उन्होंने सूचना का अधिकार के तहत आवेदन देकर उस बैठक के मिनट्स, फाइल नोट्स सहित मांगे, जिसमें एसआईआर कराने का निर्णय किया गया था। आयोग ने यह कहते हुए अनुरोध ठुकरा दिया कि ऐसे कोई रिकॉर्ड मौजूद ही नहीं हैं। भारद्वाज को लिखित रूप में यह भी बताया गया कि एसआईआर का फैसला निर्वाचन आयोग ने नहीं किया था।

बाद में सुप्रीम कोर्ट में बयान देते हुए आयोग के वकील ने दावा किया कि बिहार की मतदाता सूचियों में चिंताजनक विसंगतियां दिखाने वाले एक अध्ययन के आधार पर यह फैसला हुआ था। लेकिन उस स्टडी के बारे में कोई और जानकारी नहीं दी गई- इसे किसने किया? किसने करवाया? और इसके निष्कर्ष क्या थे? अदालत ने भी इन पर कोई और जानकारी नहीं मांगी।

जुलाई 2026 में संधू और जोशी ने नए मतदाताओं के नाम दर्ज करने के लिए इस्तेमाल होने वाले फॉर्म 6 में किए गए अवैध बदलावों पर आपत्ति जताई। इन बदलावों के तहत नए मतदाताओं को यह बताना था कि वे स्वयं, उनके माता-पिता या दादा-दादी 2002-03 की 'पिछली एसआईआर सूची' में दर्ज थे या नहीं। दोनों आयुक्तों ने कहा कि आयोग को इन फॉर्म में बदलाव करने का अधिकार नहीं है, ऐसे बदलाव सरकार ही कर सकती है और वह भी संसद को जानकारी देने के बाद।

जन प्रतिनिधित्व कानून की धारा 13बी के तहत हर निर्वाचन क्षेत्र में ईआरओ यानी चुनाव पंजीकरण अधिकारी मतदाता सूची का कानूनी संरक्षक होता है। केवल ईआरओ ही आवेदन प्रक्रिया आगे बढ़ाने, विवादों का फैसला करने और मतदाताओं के नाम जोड़ने या हटाने के लिए अधिकृत हैं। जोशी और संधू, दोनों ने बताया कि उन्हें कई ईआरओ से शिकायतें मिली हैं कि जनवरी 2026 में शुरू किया गए ईसीआईनेट के नए इंटरफेस तक उनकी पहुंच सीमित कर दी गई है। यह पूरी प्रक्रिया कथित तौर पर ईआरओ को बताए बिना 'केन्द्रीकृत' कर दी गई है।

मई 2026 में जोशी ने इस प्रक्रिया के ऑडिट का प्रस्ताव रखा। उन्होंने लिखा कि ऑडिट में यह प्रमाणित होना चाहिए कि 'संबंधित वैधानिक अधिकारियों के अलावा किसी और के पास मतदाता, डेटाबेस में कोई बदलाव करने के लिए अधिकार नहीं हैं।' बताया जाता है कि अगस्त 2026 में संधू ने भी यही बात दोहराई। उन्होंने दर्ज किया कि राज्य स्तर के चुनाव अधिकारी बता रहे हैं कि ईआरओनेट पोर्टल, जिसके जरिये वे मतदाता सूची का रखरखाव करते हैं, तक उनकी 'उचित और पूरी पहुंच नहीं है।' जोशी ने अपने नोट में यह भी लिखा कि आयोग की आईटी महानिदेशक सीमा खन्ना के पास 'वैधानिक अधिकारियों को कानून के तहत दी गई उचित और पूरी पहुंच तथा काम करने की स्वतंत्रता को सीमित करने का कोई कानूनी अधिकार नहीं है।'

इंडियन एक्सप्रेस की रिपोर्ट के मुताबिक, राज्य के सीईओ कार्यालयों से बार-बार भेजी गई पहुंच बहाल करने की मांगों की प्रतिलिपि खन्ना को भी भेजी गई थी। रिपोर्ट में गोवा का उदाहरण दिया गया है, जहां ईआरओ ने 97 मतदाताओं को सूची में शामिल किए जाने की मंजूरी दे दी, लेकिन वे डेटाबेस में बदलाव नहीं कर सके।

बंगाल में अपीलीय ट्रिब्यूनल के सामने लंबित 38 लाख अपीलों में से 16 लाख ऐसी थीं, जिनमें उन मतदाताओं के नाम हटाने की मांग की गई थी, जिन्हें कोलकाता हाईकोर्ट द्वारा नियुक्त न्यायिक अधिकारियों ने मतदाता सूची में शामिल करने की मंजूरी दी थी। संधू ने पूछा, 'आयोग की ओर से ये अपील दायर करने के लिए किसे अधिकृत किया गया था और किसने अधिकृत किया था?' उन्होंने यह भी दर्ज किया कि न तो उन्हें, न जोशी को और न ही पश्चिम बंगाल के मुख्य निर्वाचन अधिकारी को इसकी जानकारी दी गई थी।

एसआईआर का दूसरा चरण पश्चिम बंगाल समेत तीन केन्द्रशासित प्रदेशों और नौ राज्यों में लागू हुआ। पश्चिम बंगाल में अप्रैल 2026 में विधानसभा चुनाव हुए। दावे और आपत्तियां दर्ज कराने की अवधि में पता चला कि वहां बूथ लेवल एजेंट्स ने बड़े पैमाने पर फार्म 7 जमा किए थे।

खतरनाक फॉर्म 7 क्या है, यह अब अनपढ़ भारतीय भी जानता है। इससे किसी व्यक्ति के नाम को मतदाता सूची में शामिल किए जाने पर आपत्ति की जा सकती है या पहले से दर्ज नाम को हटाने की मांग की जा सकती है। आयोग ने फॉर्म 7 के दिशानिर्देशों में बदलाव किए। पहले यह तय किया कि कौन-कौन इन आपत्तियों को दाखिल कर सकता है, इसका दायरा बढ़ाया और फिर बड़ी संख्या में 7 जमा करने की अनुमति दे दी।

कई राज्यों में इसका इस्तेमाल मुसलमानों को निशाना बनाने के लिए बेधड़क किया गया। अनुमान लगाना मुश्किल नहीं कि किसके इशारे पर यह हुआ। अगर आपका नाम इसके कारण ड्राफ्ट मतदाता सूची से हटा दिया गया, तो अपील की प्रक्रिया की समयसीमा ऐसी थी कि आपत्ति दर्ज कराना, अपनी बात सुना पाना और अगला चुनाव आने से पहले फिर से मतदान योग्य बन पाना व्यावहारिक रूप से असंभव था।

जब तक इस पूरी कवायद को रद्द नहीं किया जाता और मतदाता सूचियों को एसआईआर से पहले की स्थिति में वापस नहीं लाया जाता, उत्तराखंड और उत्तर प्रदेश में भी यही सिलसिला दोहराया जाएगा, जहां अगले साल की शुरुआत में विधानसभा चुनाव होने हैं।

अगर आपको अब भी लगता है कि एसआईआर को खत्म करने की जरूरत नहीं है, तो इस एक और असुविधाजनक तथ्य पर गौर कीजिए।

भारत की वयस्क आबादी करीब 102 करोड़ है। लेकिन इस एसआईआर के अंत में केवल करीब 88 करोड़ लोग ही उस 'शुद्ध' मतदाता सूची में जगह बना पाएंगे, जिसमें से कथित तौर पर अयोग्य नाम हटा दिए गए हैं। आयोग ने हमें यह नहीं बताया है कि इन कथित अयोग्य वयस्कों में कितने वे अवैध 'घुसपैठिये' हैं, जिन्हें बाहर करना इस पूरी कवायद का घोषित मकसद था।

याद रखिए, यही एसआईआर शुरू करने का मूल तर्क बताया गया था। ■

फोटो: गेटी इमेजेज़

बेशक, एसआईआर को रद्द किया जाना चाहिए और सीईसी को जाना ही होगा, लेकिन घोटाले की कड़ियां और भी लंबी हैं

क्या कहती है बारिश में 15% की कमी?

जयदीप हर्डीकर

वर्ष 2025 में समस्या बेतहाशा बारिश की थी। दक्षिण-पूर्वी और मध्य महाराष्ट्र में मूसलाधार बारिश और बाढ़ के तांडव ने हजारों हेक्टेयर फसलें तबाह कर दी थीं। घर मलबे में तब्दील हो गए थे, बड़ी संख्या में मवेशी बह गए थे और हजारों परिवार बर्बादी के कगार पर पहुंच गए थे। ठीक एक साल बाद, उसी इलाके के वही गांव बिल्कुल उलट और भयावह तस्वीर पेश कर रहे हैं।

राज्य के मराठवाड़ा क्षेत्र के धाराशिव जिले की ही मिसाल लीजिए। जून और जुलाई में सामान्य बारिश के बाद अगस्त में सामान्य की तुलना में महज 27.9 प्रतिशत बारिश हुई, और 20 सितंबर तक तो यह आंकड़ा गिरकर सिर्फ 3.7 प्रतिशत पर सिमट गया। ऐन उस वक्त जब जिले की मुख्य नकदी फसल सोयाबीन में फूल आ रहे थे और फलियां बन रही थीं, आसमान से बादल गायब हो गए। कुल मिलाकर इस पूरे सीजन में जिले में दीर्घावधि औसत (603.1 मिमी) की तुलना में महज 310.7 मिमी बारिश दर्ज की गई यानी करीब 50 फीसदी की कमी। पिछले 80 दिनों से जिले की धरती पर बारिश की एक बूंद तक नहीं टपकी।

इसके नतीजे दिल दहला देने वाले हैं: भूजल स्तर सात मीटर से ज्यादा नीचे चला गया है, जो पांच साल के औसत स्तर से भी कहीं नीचे है। राजस्व अधिकारियों का प्राथमिक अनुमान है कि 80 से 85 प्रतिशत फसलें पूरी तरह बर्बाद हो चुकी हैं। किसान सूखे सोयाबीन के पौधों को चारे के रूप में इस्तेमाल करने को मजबूर हैं।

भारत से दक्षिण-पश्चिम मानसून विदा हो रहा है, और राष्ट्रीय स्तर पर बारिश में 15 प्रतिशत की कमी का अनुमान है। लेकिन यह औसत आंकड़ा संकट की उस भयावह गहराई को बिल्कुल उजागर नहीं करता जो जमीन पर पसरी है।

मौसम विभाग के 1 जून से 30 सितंबर तक के जिलेवार आंकड़े बताते हैं कि देश के 734 में से 342 जिलों में बारिश 'कम' (-20 से -59%) या 'बेहद कम' (-60 से -99%) हुई है। इनमें 303 जिलों में सामान्य से कम और 39 जिलों में भारी कमी दर्ज की गई। केवल 305 जिलों में बारिश सामान्य (-19 से +19%) दर्ज हुई है। यानी, आधे भारत ने एक बेहद खराब मानसून का दंश झेला है और देश का एक बहुत बड़ा हिस्सा सूखे और बदहाली को झेल रहा है।

ताजा संकेतों के मुताबिक, दक्षिणी प्रायद्वीप में औसतन 29 प्रतिशत बारिश की कमी का संकट है, जहां आंध्र प्रदेश सबसे बुरी मार (-43%) झेल रहा है। पूर्वी और पूर्वोत्तर भारत में 25 प्रतिशत की औसत कमी का अनुमान है, जिसमें पूर्व में बिहार (-36%) और पूर्वोत्तर में मेघालय (-59%) सबसे ज्यादा प्रभावित हैं। पंजाब, जिसने पिछले साल मूसलाधार बारिश और अचानक आई बाढ़ का कहर देखा, वहां इस बार 40 प्रतिशत तक बारिश की कमी का अंदेशा है।

मौसम विभाग के अनुसार महाराष्ट्र में मानसूनी बारिश की कुल कमी लगभग 17 प्रतिशत दिखती है। लेकिन हकीकत यह है कि राज्य के कुल 36 जिलों में से 20 जिले 'भारी कमी' वाली श्रेणी में दर्ज हैं। मराठवाड़ा के आठ जिलों में सामान्य से 30 से 50 प्रतिशत कम बारिश हुई है। यह वही इलाका है जहां औसत सालाना बारिश पहले ही महज 550 मिमी के आसपास रहती है। पश्चिमी विदर्भ का कपास बेल्ट भी प्यासा रह गया- यहां बारिश 30-40 प्रतिशत कम दर्ज की गई, और अगस्त महीने में 50 से 85 प्रतिशत की कमी ने कमर तोड़कर रख दी। लिहाजा, राष्ट्रीय औसत और महाराष्ट्र जैसे आंकड़े भले स्थिति को नियंत्रण में दिखाएं, लेकिन जब आप जिलों और तहसीलों को देखें, तो जमीनी हकीकत होश उड़ाने वाली है। इस संकट का सीधा असर खेती-किसानी की अर्थव्यवस्था पर पड़ रहा है। मानसून की यह बेरुखी आने वाले रबी (सर्दियों) की बुवाई को भी प्रभावित करेगी।

मानसून की नाकामी का पहला आर्थिक झटका नकदी के गहरे संकट के रूप में सामने आता है। बारिश पर निर्भर फसलों के लिए इसका मतलब है-पैदावार में गिरावट, सिंचाई और खाद-बीज पर अधिक लागत, खेत पर उपज के औने-पौने दाम और सीजन के शुरू में लिए गए फसली कर्ज को चुकाने में घोर लाचारी। समूचे भारत में किसान इस वक्त हाथ खाली होने के भयानक संकट से जूझ रहे हैं।

इसके बाद कर्ज का संकट गहराता है। खरीफ सीजन के शुरू में साहूकार या बैंक से कर्ज लेने वाले किसान को फसल मरे या जिए, कर्ज चुकाना ही पड़ता है। अगर फसल चौपट हो गई, तो किसान परिवार पिछला कर्ज चुकाने के लिए तो हाथ-पांव मारेगा ही, अगली फसल की लागत जुटाने के लिए भी मोहताज हो जाएगा। यह संकट सिर्फ किसान परिवार की नहीं। फसलें बर्बाद होने या पैदावार घटने से ग्रामीण दिहाड़ी मजदूरों के काम के अवसर भी छिन जाते हैं।

पूरे देश में यही ढांचा दोहराया जा रहा है, हालांकि कुछ फसलों पर इसकी मार कहीं ज्यादा विनाशकारी है। महाराष्ट्र, तेलंगाना और कर्नाटक की सोयाबीन और कपास पट्टियां भारी संकट में हैं। ऐसे ही महाराष्ट्र, कर्नाटक, तेलंगाना, आंध्र, राजस्थान और मध्य प्रदेश में दालों की फसलें दम तोड़ रही हैं। कई दक्षिणी और पूर्वी राज्यों में धान की रोपाई और फसल गहरे दबाव में है।

चावल का उत्पादन देश के सामने सबसे स्पष्ट खतरे की घंटी बजा रहा है। रॉयटर्स की एक रिपोर्ट के मुताबिक, 2026 में भारत के चावल उत्पादन में लगभग 1 करोड़ टन की कमी आ सकती है, जो दो दशकों की सबसे बड़ी गिरावट होगी। अगस्त में खाद्य मुद्रास्फीति पहले ही 5.95 प्रतिशत पर पहुंच चुकी थी। कमजोर मानसून और उत्पादन में गिरावट खाने-पीने की चीजों की कीमतों में आग लगाएगी।

17 सितंबर तक के आंकड़ों के मुताबिक, केन्द्रीय जल आयोग की निगरानी वाले 178 प्रमुख जलाशयों में पानी घटकर 131.17 अरब घन मीटर रह गया है। यह पिछले साल इसी अवधि के जलस्तर से 21 प्रतिशत कम है और पिछले 10 वर्षों के औसत से लगभग 9 प्रतिशत नीचे।

आईआईटी गांधीनगर के 'इंडिया ड्रॉट मॉनीटर' द्वारा बारिश और अन्य जल-जलवायु संकेतकों के आधार पर किए गए सूखे के आकलन से पता चलता है कि भारत का 53.2 प्रतिशत भू-भाग किसी न किसी स्तर के सूखे की चपेट में है। इसमें से 33.4 प्रतिशत इलाका मध्यम या उससे बदतर सूखे में है, 15.4 प्रतिशत हिस्सा गंभीर सूखे का सामना कर रहा है और 3.8 प्रतिशत भू-भाग अत्यंत गंभीर सूखे की आग में झुलस रहा है।

*

इस बीच एक और कयामती घड़ी लगातार टिक-टिक कर रही है। 16 सितंबर को 188 पारिस्थितिकीविदों और पर्यावरण वैज्ञानिकों के समूह ने अपने साथियों, वित्तपोषक संस्थाओं और सरकारी एजेंसियों को 2026-27 में आने वाले तथाकथित 'सुपर अल नीनो' के मद्देनजर देशभर में अत्यधिक गर्म और शुष्क मौसम, समुद्री हीटवेव और जंगलों, घास के मैदानों, मीठे पानी के स्रोतों तथा तटीय पारिस्थितिकी तंत्र में व्यापक विनाश की आशंका जताई है।

वैज्ञानिकों का कहना है कि प्रशांत महासागर की सतह का तापमान अगस्त में सामान्य से 2.6 डिग्री सेल्सियस अधिक दर्ज किया गया, और उनका अनुमान है कि यह तापमान विसंगति 4 डिग्री सेल्सियस तक जा सकती है- जो पिछले 1,000 वर्षों के ऐतिहासिक स्तर को भी पार कर जाएगी।

यह समझना जरूरी है कि ये वैज्ञानिकों के अनुमान हैं, और 'सुपर अल नीनो' कोई ऐसा औपचारिक पैमाना नहीं जिसे भारतीय मौसम विभाग अपने काम में इस्तेमाल करता हो।

शेष पेज 2 पर ▸

फोटो: गेटी इमेजेज़

असलियत बताने के बजाय उसे छिपाते ज़्यादा हैं औसत बारिश में कमी के आंकड़े

जिन जिलों का डेटा उपलब्ध था, उनमें से लगभग आधे जिलों में बारिश की कमी है

राज्य 360° पश्चिम बंगाल
कोलकाता

ईसाई भी हिंदुत्ववादी गुंडों के निशाने पर

कुणाल चटर्जी और सौरभ सेन

सुभाषग्राम (दक्षिण 24 परगना) में एक निर्माणाधीन चर्च पर उन्मादी भीड़ का धावा। मजेर पाड़ा (दक्षिण 24 परगना) में मोटरसाइकिल सवार 100 से ज्यादा उपद्रवियों का तांडव - एक घर का ताला तोड़ दिया गया, पादरी पिंटू पॉले और प्रार्थना कर रहे श्रद्धालुओं पर जानलेवा हमला हुआ, और क्रॉस तोड़ दिया गया। पादरी सुरजीत घोष के मुताबिक पूर्व बर्धमान के फरीदपुर में रविवार की प्रार्थना सभा के दौरान हमला। मेदिनीपुर में प्रार्थना सभा से एक पादरी का दिनदहाड़े अपहरण और एक प्रेस्बिटेरियन हाउस चर्च में भीड़ द्वारा तोड़फोड़। पश्चिम मेदिनीपुर में एक नवविवाहित ईसाई जोड़े के लिए आयोजित निजी धन्यवाद प्रार्थना को जबरन रोकना। हिंगलगंज (उत्तर 24 परगना) में एक घर में घुसपैठ और विदेशी मेहमानों सहित प्रार्थना कर रहे लोगों पर धर्मांतरण का झूठा आरोप। पूर्व बर्धमान के सहानागर में एक दफन-संस्कार को भीड़ द्वारा यह कहकर रोकना कि पहले जमीन के कब्रिस्तान होने के कानूनी दस्तावेज दिखाओ।

फादर सैमुअल हेम्ब्रम बताते हैं कि मृत महिला के शव को बर्धमान के दूसरे कब्रिस्तान ले जाना पड़ा। उन्होंने कहा, 'महिला का पार्थिव शरीर कब्र में उतारा जा चुका था; लेकिन उपद्रवी भीड़ ने उसे बाहर निकलवा दिया।' पुलिस अधीक्षक और प्रखंड विकास अधिकारी (बीडीओ) को दी गई उनकी शिकायत नक्कारखाने में तूती साबित हुई। उल्टे एसपी ने यह दलील दी कि मृतक महिला उस इलाके की नहीं थी, इसलिए वह वहां दफनाए जाने की हकदार नहीं थी।

पीड़ितों का साफ कहना है कि इस सुनियोजित हिंसा के लिए विश्व हिन्दू परिषद और बजरंग दल जिम्मेदार हैं, जिन्हें स्थानीय पुलिस का खुला संरक्षण हासिल है। विरले मामलों में ही भीड़ 'चेतावनी' के बाद तितर-बितर होती है; ज्यादातर मामलों में उल्टे पादरी को ही गिरफ्तार कर सलाखों के पीछे भेज दिया जाता है। ये हमलावर कौन होते हैं, यह कोई पहेली नहीं: गले में भगवा गमछे डाले और 'जय श्री राम' के नारे लगाते लोगों के बेखौफ झुंड।

पश्चिम बंगाल में मई 2026 में भाजपा की सरकार बनने से पहले ईसाइयों पर ऐसे हमलों की बात कभी सुनने में नहीं आती थी। राज्य की कुल आबादी में ईसाई एक प्रतिशत से भी कम (2011 की जनगणना के अनुसार 0.72 प्रतिशत) हैं। इनमें से कई घटनाओं के वीडियो बाकायदा रिकॉर्ड कर सोशल मीडिया पर डाले गए। जुलाई से सितंबर के बीच अखबारों में ऐसी खबरें लगातार छपने लगीं, जबकि अप्रैल से जून के बीच एक भी मामला सामने नहीं आया। अचानक ऐसा क्या बदल गया? क्या इस तरह ये हिन्दुत्ववादी लठैत अपने आकाओं के प्रति वफादारी साबित कर रहे हैं?

सुभाषग्राम (दक्षिण 24 परगना) में नए बने चर्च पर 5 जुलाई को भीड़ के हमले की घटना उन घटनाओं में से एक थी, जिसने इस सिलसिले की शुरुआत की

हैरत की बात यह है कि बंगाल के ईसाई समुदाय पर ये हमले ऐसे दौर में तेज हुए हैं, जब केन्द्र सरकार और भाजपा-शासित कुछ अन्य राज्य सरकारें ईसाइयों के उत्पीड़न पर कूटनीतिक रूप से कदम पीछे खींचने के संकेत दे रही थीं।

12 अगस्त को केन्द्र सरकार ने विदेशी अंशदान नियमन संशोधन (एफसीआरए) विधेयक, 2026 को राज्यसभा में जबरन पारित कराने के बजाय संयुक्त संसदीय समिति (जेपीसी) को भेज दिया। 31 अगस्त को गोवा विधानसभा ने राज्य कैबिनेट द्वारा मंजूरी मिलने के महज एक हफ्ते के भीतर 'अवैध धर्मांतरण निषेध विधेयक, 2026' को ठंडे बस्ते में डाल दिया। उसी दिन ओडिशा सरकार ने ऑस्ट्रेलियाई मिशनरी ग्राहम स्टेन्स और उनके दो मासूम बेटों की 1999 में की गई जघन्य हत्या के मामले में उम्रकैद काट रहे दारा सिंह की समय पूर्व रिहाई की अर्जी खारिज कर दी।

बंगीय ख्रीष्टीय परिसेवा (बीसीपी) ने पिछले तीन महीनों में हमले, तोड़फोड़ और उत्पीड़न के 36 मामलों का दस्तावेजीकरण किया है, जिनमें 11 में प्राथमिकी दर्ज कराई गई है। संगठन का कहना है कि यह केवल छिटपुट झड़पों का मामला नहीं, बल्कि सुनियोजित हिंसा है। उपद्रवी बेखौफ होकर हमलों का वीडियो बना रहे हैं और सोशल मीडिया पर गर्व से प्रसारित कर रहे हैं। बीसीपी के संस्थापक-सचिव हेरोद मल्लिक कहते हैं, 'मुख्यमंत्री ने गुंडा दमन कानून बनाया है। हमें उम्मीद है कि वे इस अराजकता पर लगाम कसेंगे।' इस बीच, दहशत के साये में जी रहे पीड़ितों को संगठन कानूनी सहायता मुहैया करा रहा है।

पश्चिम बंगाल आरएसएस के सचिव जिष्णु बसु का दावा है कि ये 'स्थानीय विवाद हैं, जिन्हें न तो आरएसएस या भाजपा ने शुरू किया है और न ही राज्य सरकार इन्हें शह दे रही है'; और 'कुछ निहित स्वार्थी तत्व' इन्हें तूल दे रहे हैं। राज्य के मंत्री क्षुदिराम टुडू कहते हैं, 'हमारी सरकार किसी की निजी आस्था में दखल देने में यकीन नहीं रखती। लेकिन अगर जबरन धर्मांतरण हो रहा है, तो कानून अपना काम करेगा।' कानून अपना काम करे यह तो ठीक है, लेकिन क्या कानून का मतलब खुलेआम कानून हाथ में लेती हिंसक भीड़ है?

दक्षिणपंथी कार्यकर्ता ईसाइयों के खिलाफ इस भीड़िया हिंसा को हिन्दू धर्म से ईसाई धर्म में हो रहे कथित 'धर्मांतरण के खिलाफ जन-आक्रोश' बताकर सही ठहराने में जुटे हैं। कट्टर हिन्दूवादी संगठन 'सिंह वाहिनी' के अध्यक्ष देबदत्त माजी का कहना है, 'उलुबेड़िया और अन्य जगहों पर पैसे का लालच देकर धर्मांतरण का धंधा धड़ल्ले से चल रहा है। इसे बर्दाश्त नहीं किया जा सकता।'

मानवाधिकार कार्यकर्ता जॉन दयाल ने 'संडे नवजीवन' से बातचीत में कहा, 'हिन्दुत्व ब्रिगेड राज्य में धर्मांतरण-रोधी कानून लाने की जमीन तैयार करने के लिए ईसाइयों समेत बंगाल के सभी अल्पसंख्यक समुदायों में दहशत भरना चाहती है। हम ऑल इंडिया कैथोलिक यूनियन समेत तमाम ईसाई संगठनों की भागीदारी के साथ कोलकाता में एक बड़ी जन-सुनवाई आयोजित करने जा रहे हैं।'

मुस्लिम पुलिस अफसर भी निशाने पर

सत्ता के नशे में चूर भाजपा समर्थकों की गुंडागर्दी नंगा नाच कर रही है। टीएमसी सांसद महुआ मोइत्रा पर अंडे फेंकने से लेकर विपक्षी कार्यकर्ताओं पर हमलों तक, ऐसा लगता है कि उनकी 'आजादी' बेकाबू हो चुकी है। 22 सितंबर को कोलकाता पुलिस के पूर्व संयुक्त आयुक्त और वर्तमान टीएमसी नेता हुमायूं कबीर पर एक थाने के ठीक बाहर भीड़ ने हमला कर दिया। वर्दीधारी पुलिस तमाशबीन बनी देखती रही और बीच-बचाव तक नहीं किया। इस सेवानिवृत्त आईपीएस अधिकारी को अपनी जान बचाने के लिए थाने के भीतर जाकर फेसबुक लाइव के जरिये गुहार लगानी पड़ी। कबीर ने कहा, 'मैंने पुलिस में 31 साल नौकरी की है, लेकिन खाकी का ऐसा पतन कभी नहीं देखा।'

यह हमला महुआ मोइत्रा के उस सनसनीखेज खुलासे के तुरंत बाद हुआ, जिसमें उन्होंने आरोप लगाया था कि केन्द्रीय गृह मंत्री अमित शाह के सरकारी कार्यक्रमों से सेवारत मुस्लिम आईपीएस अफसरों को जान-बूझकर बाहर रखा जा रहा है। राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग को भेजी शिकायत में मोइत्रा ने आरोप लगाया कि सिलीगुड़ी के पुलिस कमिश्नर सैयद वकार रजा को डीजीपी ने जुलाई में सभी सीमावर्ती जिलों के पुलिस अधीक्षकों की उच्चस्तरीय बैठक से उठकर चले जाने को कहा। शिकायत के अनुसार, रजा को पूरी बैठक के दौरान अपनी आईएएस पत्नी शमा परवीन के दफ्तर में बैठकर समय काटना पड़ा। अपने एक वरिष्ठ साथी के इस सार्वजनिक अपमान पर आईपीएस एसोसिएशन के मुंह पर ताला लगा हुआ है।

मोइत्रा ने आरोप लगाया कि स्पेशल टास्क फोर्स के महानिदेशक जावेद शमीम और अग्निशमन एवं आपातकालीन सेवाओं के अतिरिक्त मुख्य सचिव खलील अहमद को भी ऐसे आयोजनों से दूर रहने की हिदायत दी गई थी।

एक अन्य आईपीएस अधिकारी बुशरा बानो का खड़गपुर में तैनाती के महज ढाई महीने के भीतर 'जनहित' के नाम पर तबादला कर दिया गया। एक हिन्दुत्ववादी संगठन ने छात्रों को दिए उनके प्रेरणादायी संबोधन में आम अरबी शब्दों- 'इंशाअल्लाह', 'अस्सलाम-अलैकुम' और 'जजाकल्लाह'- के इस्तेमाल को 'आपत्तिजनक' और 'देशद्रोही' करार देकर बखेड़ा खड़ा किया था।

विधानसभा के पटल पर मुख्यमंत्री शुभेंदु अधिकारी ने 10,000 बांग्लादेशी मुसलमानों को बंगाल से बाहर खदेड़ने की डींग हांकी है (जिसका कोई जमीनी या सांख्यिकीय आधार नहीं है)। सदन के बाहर उन्होंने धमकी भरे लहजे में कहा कि 6 अक्तूबर को नंदीग्राम और रेजीनगर के उपचुनाव मुसलमानों के लिए 'अग्निपरीक्षा' होंगे। नंदीग्राम में भले ही मुस्लिम मतदाता निर्णायक न हों, लेकिन मुर्शिदाबाद की रेजीनगर सीट मुस्लिम समर्थन के बिना जीतना नामुमकिन है। इसके बावजूद, सत्ताधारी दल दोनों सीटें जीतने का दंभ भर रहा है। ■

सिर्फ़ पिछले तीन महीनों में मारपीट और तोड़-फोड़ के 36 मामले रिकॉर्ड किए गए हैं

महुआ मोइत्रा के घर अंडे फेंके जाने के दौरान बाहर मौजूद भाजपा कार्यकर्ता और पुलिस

राज्य 360° राजस्थान
जयपुर

बोर्ड परीक्षा में नकल? हाई कोर्ट ने की मदद

प्रकाश भंडारी

राजस्थान राज्य निर्वाचन आयोग के आंकड़ों के मुताबिक, हाल ही में संपन्न हुए निकाय चुनावों में भाजपा ने कांग्रेस को महज 0.94 प्रतिशत वोट शेयर के मामूली अंतर से मात दी। करीब 10,000 वार्डों में से भाजपा ने 4,179 जीते, जबकि कांग्रेस को 3,613 और निर्दलीयों को 2,273 वार्डों में जीत हासिल हुई। राष्ट्रीय लोकतांत्रिक पार्टी (रालोपा) ने 63, आम आदमी पार्टी ने 42, माकपा ने 38 और बसपा ने 19 वार्डों पर परचम लहराया।

राज्य के 309 शहरी स्थानीय निकायों में से 148 में भाजपा सबसे बड़े दल के रूप में उभरी, जबकि कांग्रेस को 104 निकायों में बढ़त मिली; 10 निकायों में मुकाबला बराबरी पर छूटा। निर्दलीय उम्मीदवारों ने 27 प्रतिशत का भारी-भरकम वोट हासिल कर कई निकायों में 'किंगमेकर' की भूमिका निभाई और महापौर, नगर पालिका अध्यक्ष तथा बोर्ड बनाने में निर्णायक साबित हुए।

जिन 10 प्रमुख शहरों में महापौर के चुनाव हुए, उनमें से छह पर भाजपा ने कब्जा जमा लिया। जयपुर, जोधपुर और कोटा में चुनाव प्रक्रिया तथा मतगणना से जुड़े विवादों के चलते चुनाव टाल दिए गए। दूसरी तरफ, बीकानेर में कांग्रेस अपना महापौर जिताने में कामयाब रही।

उम्मीदवारों की जीत के जश्न के बीच मुख्यमंत्री भजन लाल शर्मा और पूर्व मुख्यमंत्री अशोक गहलोत के बीच जुबानी जंग छिड़ गई। गहलोत ने मीडिया के सामने तल्ख लहजे में कहा कि वह हमेशा से शर्मा को एक भला और ईमानदार इंसान समझते रहे- उन्होंने सपने में भी नहीं सोचा था कि इतना 'सीधा-सादा' आदमी चुनाव जीतने के लिए इस हद तक नीचे गिर सकता है। इसपर पलटवार करते हुए शर्मा ने गहलोत को अपने काम से काम रखने और नसीहतें न देने की दो-टूक सलाह दी।

गहलोत के आरोप बेहद सनसनीखेज थे: पाला बदलने के लिए निर्वाचित पार्षदों को दो-दो करोड़ रुपये तक की खुली पेशकश की गई। उन्होंने कहा कि राजस्थान में ऐसा नंगा नाच पहली बार देखा गया, जहां सत्तारूढ़ दल के पक्ष में परिणाम झुकाने के लिए पुलिस और नौकरशाहों को पार्षदों को धमकाने के काम में बेशर्मी से झोंक दिया गया।

हनुमानगढ़ में एक निर्दलीय पार्षद को जीत के तुरंत बाद पुराने मनगढ़ंत मामले में गिरफ्तार कर लिया गया। निर्वाचित कांग्रेस पार्षदों को नगर पालिका कानूनों के कथित उल्लंघन के पुलिस नोटिस थमाए गए। कारोबारियों और व्यापारियों को कार्रवाई की धमकियां दी गईं। पार्षदों पर फर्जी मुकदमे ठोके गए ताकि उन्हें पाला बदलने पर मजबूर किया जा सके।

एक अन्य घटना में, हिमाचल प्रदेश से तिजारा में वोट डालने लौट रहे कांग्रेस पार्षदों को पंचकूला में हरियाणा पुलिस ने बीच रास्ते में ही रोक लिया। पुलिस ने तस्वीरों से पार्षदों की शिनाख्त की और उन्हें साथ चल रहे पार्टी कार्यकर्ताओं से अलग कर दिया। यह कोई सामान्य पुलिस चेकिंग नहीं थी, बल्कि एक सुनियोजित और लक्षित अभियान था। गहलोत ने आरोप लगाया कि ऐसा खुल्लम-खुल्ला हस्तक्षेप मुख्यमंत्री की जानकारी और सहमति के बिना मुमकिन नहीं था।

कांग्रेस कार्यकर्ताओं द्वारा साझा किए गए वीडियो में इस नाटकीय 'बचाव' की तस्वीरें कैद हुईं। पार्षदों द्वारा फोन पर जबरन उठाए जाने की सूचना देने के बाद कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने हाईवे पर बस को रुकवाया। खिड़कियों से कूदकर बाहर निकलते पार्षदों को देखा गया, जिसके बाद उन्हें सुरक्षित अलवर जिले के तिजारा पहुंचाया गया, जहां उन्होंने अपना वोट डालकर बोर्ड का गठन किया।

इस पूरे घटनाक्रम ने मथानिया, पावटा, कुचेरा, गंगानगर, निम्बाहेड़ा, अलवर और हनुमानगढ़ सहित कई जगहों पर चुनाव से पहले वार्डों के मनमाने परिसीमन और मतदान के दौरान दी गई धमकियों से दूषित हुए चुनावी माहौल को और ज़्यादा कलंकित कर दिया। घटनाओं की गंभीरता को देखते हुए कांग्रेस के संगठन महासचिव के.सी. वेणुगोपाल को आनन-फानन में जयपुर पहुंचकर हालात का जायजा लेना पड़ा। उन्होंने पुलिस अधिकारियों और नौकरशाहों को खुली चेतावनी दी कि उनके इस गैर-जिम्मेदाराना और पक्षपाती रवैये का हिसाब लिया जाएगा।

*

इस सियासी घमासान के बीच एक अभूतपूर्व घटनाक्रम में राजस्थान हाईकोर्ट को निर्वाचित पार्षदों की आजादी की रक्षा करने और महापौर और बोर्ड चुनावों में उनका मताधिकार सुनिश्चित करने के लिए सीधे दखल देना पड़ा। रविवार, 20 सितंबर को-अदालत की छुट्टी के दिन-जयपुर और जोधपुर की पीठों ने चुनाव से जुड़ी कम-से-कम 10 अर्जियों पर विशेष सुनवाई की। मुख्य न्यायाधीश संजय कुमार अग्रवाल ने रजिस्ट्रार को अति-आवश्यक याचिकाओं के लिए अदालत खोलने का विशेष आदेश दिया।

राजस्थान बार काउंसिल के पूर्व अध्यक्ष घनश्याम सिंह राठौड़ ने कहा, 'निकाय चुनावों के मामले में रविवार को उच्च न्यायालय का दखल देना और आधी रात के बाद आदेश पारित होना अपने आप में अभूतपूर्व है।'

जोधपुर में न्यायमूर्ति नूपुर भाटी ने तमाम अर्जियों पर सुनवाई की; वहीं जयपुर में न्यायमूर्ति अनूप कुमार ढंड, कुलदीप माथुर और सुनील बेनीवाल की पीठों ने देर रात तक मामलों की सुनवाई की। अधिकतर याचिकाओं में पुलिस और प्रशासन की जबरिया कार्रवाई से अंतरिम संरक्षण, प्रशासनिक पक्षपात और मनमानी से राहत और वोट डालने के लिए अतिरिक्त समय देने की गुहार लगाई गई थी। ज़्यादातर याचिकाकर्ता कांग्रेस या निर्दलीय उम्मीदवार थे जो पार्षद चुने गए थे।

कुचेरा में पुलिस कार्रवाई पर अदालती रोक की बदौलत कांग्रेस के तेजपाल मिर्धा नगर पालिका अध्यक्ष की कुर्सी जीतने में सफल रहे। बीकानेर में निर्वाचित कांग्रेस पार्षद मकसूद अहमद को भी ऐसी ही राहत मिली। हनुमानगढ़ में कांग्रेस पार्षद मंजू कड़वा को अंतरिम सुरक्षा मिली, जिसके दम पर वह अध्यक्ष पद का चुनाव जीत गईं। हनुमानगढ़ के नौ अन्य निर्वाचित पार्षदों को मिली अदालती सुरक्षा ने बोर्ड पर जबरन कब्जा करने की भाजपा की साजिश को नाकाम कर दिया।

श्रीविजयनगर में तो अदालत ने और भी कड़ा रुख अख़्तियार किया। न्यायमूर्ति नूपुर भाटी और बलजिंदर सिंह संधू की पीठ ने पुलिस अधीक्षक (एसपी) को निर्देश दिया कि अगवा किए गए पार्षद विजय कुमार को हर हाल में तलाश कर मतदान के लिए पेश किया जाए। इसी तरह पुलिस हिरासत में लिए गए दो अन्य पार्षदों को भी मतदान के लिए पेश करने और वोट डालने की अनुमति देने का आदेश हुआ। केकड़ी और तिजारा में हाईकोर्ट के त्वरित दखल से कांग्रेस उम्मीदवार अनिल मित्तल और रामावतार सैनी के पालिका अध्यक्ष बनने की राह आसान हुई।

अधिवक्ता अमृत सुरोलिया ने कहा कि मतदान का समय बीतने से पहले अदालत के त्वरित हस्तक्षेप ने लोकतांत्रिक प्रक्रिया को पटरी से उतरने से बचा लिया। उन्होंने बताया कि अगवा पार्षद की बरामदगी के लिए एक आईपीएस अधिकारी यानी जिले के एसपी को व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार ठहराना एक ऐतिहासिक कदम था।

वकीलों ने हरियाणा पुलिस की भूमिका की उच्चस्तरीय जांच की मांग की है, क्योंकि राजस्थान के पार्षदों को हिरासत में लेने की कार्रवाई दोनों राज्यों के शीर्ष स्तर पर तालमेल के बिना संभव नहीं थी। यह चर्चा भी जोरों पर रही कि मुख्यमंत्री के गृह जिले भरतपुर में-जिसकी सीमा उत्तर प्रदेश से लगती है-36 निर्दलीय पार्षदों को यूपी पुलिस का खौफ दिखाकर भाजपा समर्थित अध्यक्ष पद के उम्मीदवार का साथ देने के लिए धमकाया गया। उन्होंने चुनाव को हाईजैक करने की साजिश रचने वाले पुलिस अफसरों की पहचान कर उन्हें तत्काल निलंबित करने की मांग की।

पूर्व पुलिस महानिदेशक सुनील मेहरोत्रा ने माना कि अपहरण, अवैध हिरासत और दबाव बनाने में वरिष्ठ आईपीएस और आईएएस अधिकारियों की साठगांठ साबित करना कानूनी रूप से कठिन जरूर है। लेकिन उन्होंने साफ कहा कि अगर अफसरों ने सत्ता के राजनीतिक दबाव के आगे घुटने टेके हैं, तो यह समूचे प्रशासनिक तंत्र के लिए बेहद चिंताजनक और अफसोसनाक है। ■

अजमेर में जश्न: उन 104 शहरी निकायों में से एक, जहां कांग्रेस सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरी

क्या कहती है बारिश में 15% की कमी?

पेज एक का शेष

लेकिन यह चेतावनी एक अन्य कारण से अहम है: वैज्ञानिकों का मानना है कि इसके मुख्य प्रभाव नवंबर 2026 से शुरू होकर 2027 तक खिंचेंगे, यानी अगले साल मानसून की वापसी के काफी समय बाद तक। वैज्ञानिकों के अनुसार हिन्द महासागर द्विध्रुव, जिसे 'इंडियन नीनो' भी कहते हैं, अल नीनो के प्रभाव को भड़का भी सकता है या कमजोर भी कर सकता है, और इसका असर अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों में अलग-अलग होगा।

वैज्ञानिकों ने आगाह किया गया है कि घास के मैदानों, सवाना और शुष्क पर्णपाती जंगलों में दावानल और सूखे के कारण बायोमास और पेड़ों के जीवित रहने की क्षमता में भारी गिरावट आ सकती है। अधिक ऊंचाई वाले इलाकों में कम बारिश का मतलब होगा जंगली और पालतू मवेशियों के लिए चारे की किल्लत। शहरों का कंक्रीट का ताप पेड़ों और वनस्पति पर इस मार को और गहराएगा।

पर्यावरण विज्ञानी अपील कर रहे हैं कि संकट पूरी तरह गहराने से पहले इसके जमीनी प्रभाव का एक साझा ढांचा तैयार किया जाए। भारत के मौजूदा सूखे के नक्शे यह तो बताते हैं कि बारिश की कमी का संकट कहां सघन है, लेकिन यह नहीं बताते कि अगले छह महीनों में फसलों की पैदावार, मवेशियों, जंगलों, खेतिहर मजदूरों, पानी की उपलब्धता और ग्रामीण आजीविका का क्या हश्र होने वाला है।

केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा फसल नुकसान के आकलन 5 अक्टूबर से आने शुरू होंगे, लेकिन सरकारी राहत की फूटी कौड़ी भी अगर पहुंची, तो वह बहुत देर से और ऊंट के मुंह में जीरे के समान ही होगी। ■

इस समाचारपत्र का प्रकाशन **पवन कुमार बंसल** द्वारा हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-11002 से **दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड**, हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 की ओर से संपादन **राजेश झा** द्वारा और मुद्रण आर. सी. मल्होत्रा द्वारा दि इंडियन एक्सप्रेस (प्रा.) लिमिटेड प्रेस, ए-8, सेक्टर-7, नोएडा- 201301, उत्तर प्रदेश से किया जा रहा है।

जब न्यूज चैनल का मालिक खुद बन गया खबर

मेस्सी के फर्जी मैच से लेकर वन कटाई तक अगस्टिन बंधुओं का वित्तीय घपला और प्रेस स्वतंत्रता को ढाल बनाना गंभीर मामला

के.ए. शाजी

केरला पुलिस ने कोट्टि के बाहरी इलाके कलामस्सेरी स्थित मलयालम समाचार चैनल 'रिपोर्टर टीवी' के मुख्यालय पर 16 सितंबर की सुबह करीब 5 बजे दस्तक दी। एसआईटी चैनल के मालिक एंटो ऑगस्टीन और अर्जेंटीना की फुटबॉल टीम एवं लियोनेल मेस्सी के केरला दौरे से जुड़े उल्लंघनों के सबूत तलाश रहा था। यह ऐसा बहुप्रचारित आयोजन था, जो कभी जमीन पर उतरा ही नहीं।

इसके साथ ही कोच्चि और ऑगस्टीन बंधुओं के पैतृक जिले वायनाड में एंटो और उनके भाइयों, रोझी एवं जोसेकुट्टी के ठिकानों पर एक साथ छापे मारे गए। 'रिपोर्टर टीवी' का संचालन करने वाली 'रिपोर्टर ब्रॉडकास्टिंग कंपनी' इस आयोजन से सीधे जुड़ी थी, जिसे पूर्ववर्ती पिनाराई विजयन के नेतृत्व वाली एलडीएफ सरकार के दौर में एक ऐतिहासिक तमाशे के तौर पर प्रचारित किया गया था। गृहमंत्री रमेश चेन्निथला ने कहा कि यह कार्रवाई खेल सचिव की रिपोर्ट के आधार पर दर्ज आपराधिक मामले और एसआईटी के बार-बार जारी समन की ऑगस्टीन द्वारा की गई अनदेखी के बाद की गई है।

चैनल प्रबंधन का आरोप है कि पुलिस जबरन न्यूजरूम में घुसी, कामकाज को ठप किया और ड्यूटी कर रहे पत्रकारों के फोन जब्त कर लिए। प्राइम-टाइम बहसों में नियमित दिखने वाले एंटो ऑगस्टीन ने इसे 'प्रेस की आजादी पर हमला' करार दिया। पूर्व मुख्यमंत्री और विपक्ष के नेता पिनाराई विजयन और माकपा के अन्य वरिष्ठ नेताओं ने भी सुर में सुर मिलाया। दूसरी ओर, पुलिस ने चैनल के संपादकीय कामकाज में किसी भी दखल से साफ इनकार करते हुए दावा किया कि यह तलाशी केवल आपराधिक साक्ष्य जुटाने तक सीमित थी।

कार्रवाई का बचाव करते हुए मुख्यमंत्री वी.डी. सतीशन ने निर्भीक पत्रकारिता के लिए प्रताड़ित किए जाने वाले पत्रकार और वित्तीय धोखाधड़ी की जांच का सामना कर रहे मीडिया मालिक के बीच के फर्क पर फोकस किया। उन्होंने साफ किया कि यह कार्रवाई इसलिए नहीं हुई कि चैनल सरकार विरोधी खबर दिखा रहा था। यह चैनल मेस्सी के उस फर्जी आयोजन से सीधे जुड़ा था और दर्ज मुकदमे में कंपनी का नाम बाकायदा शामिल है।

छापेमारी के अगले दिन, आबकारी विभाग ने एंटो ऑगस्टीन को गिरफ्तार कर लिया, जब वायनाड स्थित उनके आवासीय परिसर से विदेशी शराब, भारत निर्मित विदेशी शराब और अवैध रूप से बनाई गई देशी शराब बरामद हुई। आबकारी विभाग ने अबकारी कानून के तहत मामला दर्ज किया। ऑगस्टीन ने शराब रखने या उसके सेवन से इनकार किया और उस संपत्ति से अपना कोई सीधा नाता होने से पल्ला झाड़ लिया। बाद में केरल हाईकोर्ट ने उन्हें सशर्त जमानत दे दी।

वायनाड की उस आलीशान संपत्ति की भी अलग से जांच चल रही है। ऑगस्टीन का दावा है कि यह हवेली उनकी सास की है। जांच के मुताबिक, इस संपत्ति को 13 करोड़ रुपये के लिए बैंक के पास गिरवी रखा गया था। जब कर्ज का भुगतान रुका और एनपीए बढ़ा, तो बैंक ने सरफेसी कानून के तहत इसकी नीलामी की। हैरत की बात यह है कि नीलामी में ऑगस्टीन की सास अकेली बोलीदाता बनीं और 13 करोड़ की जायदाद को महज 2 करोड़ रुपये में अपने नाम करा लिया। एसआईटी अब जांच कर रही है कि क्या यह लेन-देन धोखाधड़ी के दायरे में आता है और क्या इसमें बैंक अधिकारियों की मिलीभगत थी?

एक अन्य आपराधिक मामला ऑगस्टीन के उस सार्वजनिक दावे से जुड़ा है जिसमें उन्होंने कहा था कि उनके पास ऐसे दस्तावेज हैं जो बताते हैं कि सतीशन ने पहली शादी को कानूनी रूप से खत्म किए बिना 2012 में कर्नाटक में दूसरी शादी की। रिपोर्टर टीवी ने उन दस्तावेजों की जांच तो की, लेकिन खबर का प्रसारण नहीं किया। पुलिस का आरोप है कि वे दस्तावेज फर्जी थे और ऑगस्टीन दो अज्ञात लोगों के साथ मिलकर मुख्यमंत्री को बदनाम करने की साजिश में शामिल थे। सवाल उठता है कि अगर उन्हें उन कागजातों के फर्जी होने का यकीन था, तो उन्होंने जांच के लिए उन्हें पुलिस या संबंधित एजेंसियों को क्यों नहीं सौंपा?

ऑगस्टीन और उनके भाई पहले भी कई गंभीर मामलों में घिरते रहे हैं। साल 2016 में, एंटो और जोसेकुट्टी को 'मैंगो फोन' घोटाले में गिरफ्तार किया गया था, जिसे उन्होंने आईफोन के भारतीय विकल्प के तौर पर प्रचारित किया था। आरोप था कि पहले से गिरवी रखी संपत्तियों के फर्जी दस्तावेज तैयार कर बैंकों से भारी कर्ज उठाया गया। सस्ते चीनी मोबाइलों को आयात कर उन पर अपना ठप्पा लगाने का यह फर्जीवाड़ा आखिरकार खुल गया।

रिपोर्टर टीवी के ऑफिस में पुलिसकर्मी और चैनल के मैनेजिंग डायरेक्टर एंटो अगस्टिन

पुलिस फाइलों में केरला और कर्नाटक की कई शिकायतें हैं, लेकिन इस परिवार के टेलीविजन की दुनिया में कदम रखने से पहले का सबसे कुख्यात मामला 'मुत्तिल वन कटाई' का है। साल 2020 के अंत और 2021 के शुरू में, दक्षिण वायनाड के मुत्तिल इलाके से 41 शीशम के पेड़ काटे गए (जिनमें से दो 500 साल से भी पुराने थे) और करीब 8 करोड़ मूल्य की 204 घन मीटर से अधिक कीमती लकड़ी अवैध रूप से उठाई गई। जांच के बाद ऑगस्टीन बंधुओं और अन्य के खिलाफ 36 आरोपपत्र दाखिल किए गए। इसमें राजस्व विभाग के एक आदेश के दुरुपयोग और उस आदेश के रद्द होने के बावजूद संरक्षित पेड़ों की कटाई जारी रखने में अफसरों और निजी सिंडिकेट की मिलीभगत की पोल खुली।

एक टिम्बर डीलर ने आरोप लगाया कि ऑगस्टीन बंधुओं ने 1.4 करोड़ रुपये की अग्रिम रकम ऐंठी और अवैध रूप से काटे गए पेड़ों से 54 लकड़ी के लट्ठे थमा दिए। बाद में हाईकोर्ट ने अमानत में खयानत की धारा तो हटा दी, लेकिन धोखाधड़ी के आरोप को बरकरार रखा।

> ऑगस्टीन भाइयों का मामला इस बात का उदाहरण है कि जब संदिग्ध सौदे और मीडिया का मालिकाना हक एक साथ आते हैं, तो क्या होता है

मूल रूप से 2011 में शुरू हुए 'रिपोर्टर टीवी' को 2023 में नए अवतार में पेश किया गया। एंटो खुद प्रबंध निदेशक और प्रबंध संपादक बन बैठे, जबकि उनके भाइयों ने शीर्ष पदों पर कब्जा जमा लिया। मुत्तिल कांड का एक मुख्य आरोपी जब एक प्रमुख समाचार चैनल का सर्वेसर्वा बन गया, तो उस स्क्रीन का इस्तेमाल ऑगस्टीन बंधुओं के बचाव और उनकी आलोचना करने वालों को निशाना बनाने में होने लगा।

मेस्सी मामले ने राष्ट्रीय स्तर पर सुर्खियां बटोरीं। अर्जेंटीना की राष्ट्रीय फुटबॉल टीम को कोच्चि और दो अन्य स्थानों पर मैच खेलना था। आरोप है कि अर्जेंटीना फुटबॉल एसोसिएशन के साथ फर्जी अनुबंध तैयार कर सरकार को झांसे में लिया गया और सरकारी स्वामित्व वाले जवाहरलाल नेहरू अंतरराष्ट्रीय स्टेडियम को अपने कब्जे में करा लिया गया।

राज्य जीएसटी जांचकर्ताओं ने कंपनी पर 25.78 करोड़ रुपये की कर चोरी का आकलन किया है। उन्होंने सवाल उठाया है कि महज 10 लाख रुपये की पूंजी वाली कंपनी ने 213 करोड़ रुपये से अधिक का कर्ज कैसे उठा लिया, और घोषित जीएसटी टर्नओवर के मुकाबले बैंक खातों में आए 234.31 करोड़ रुपये के अनसुलझे क्रेडिट का असली राज क्या है। कंपनी ने चैनल के दफ्तर और नवीनीकरण पर 70 करोड़ रुपये से अधिक खर्च का दावा किया था- जबकि लोक निर्माण विभाग के इंजीनियरों ने इसका कुल मूल्य महज 8.42 करोड़ रुपये आंका। विदेशी मुद्रा के लेन-देन और इनपुट टैक्स क्रेडिट के दावों की भी जांच हो रही है।

दूसरी ओर ऑगस्टीन का दावा है कि इस आयोजन के लिए सरकार खुद उनके पास आई थी और शीर्ष अधिकारी इसमें शामिल थे। इसलिए एसआईटी अब यह भी जांच कर रही है कि कभी न हो सके इस आयोजन में पूर्व मुख्यमंत्री पिनाराई विजयन या पूर्व खेल मंत्री वी. अब्दुर्रहीमान की कोई आपराधिक भूमिका थी या नहीं।

राजनीतिक विश्लेषक और दिवंगत मुख्यमंत्री वी.एस. अच्युतानंदन के पूर्व सलाहकार जोसेफ सी. मैथ्यू ने मीडिया के मालिकाना हक पर कहाः 'शीर्ष पर बैठे दागी लोगों ने एक मीडिया संस्थान के रूप में रिपोर्टर टीवी की साख और शुचिता को तार-तार कर दिया है। और यह बीमारी सिर्फ केरला तक सीमित नहीं।' 'मीडियावन' के संपादक प्रमोद रमन ने कहाः 'प्रेस की आजादी पत्रकारिता के धर्म और संपादकीय स्वायत्तता की हिफाजत के लिए है; यह आपराधिक जांच का सामना कर रहे किसी मीडिया मालिक को निजी कानूनी छूट या सुरक्षा कवच नहीं देती।'

मेस्सी का मामला फर्जी अनुबंधों, कर चोरी और सरकारी संपत्तियों से जुड़ा है। मुत्तिल कांड सदियों पुराने जंगलों की अवैध कटाई का है। आबकारी का मामला शराब के अवैध जखीरे से जुड़ा है। और सतीशन से जुड़ा मामला कथित तौर पर गढ़े गए फर्जी दस्तावेजों का है। इनमें से कोई भी काम किसी भी सूरत में पत्रकारिता नहीं है।

ऑगस्टीन बंधुओं के लिए टेलीविजन चैनल भले ही उनका सबसे चमकदार और ताकतवर मंच बन गया हो, लेकिन कानून की अदालतें और पुलिसिया जांच ही अंततः यह तय करेंगी कि क्या वे इस मंच को अपने काले कारनामों की ढाल बनाने में कामयाब हो पाएंगे। ■

राज्य 360°

तमिलनाडु

तमिलनाडु की नई सरकार के लिए नए ठिकाने की तलाश

मरीना बीच का विस्तृत नज़ारा (ऊपर) और फोर्ट सेंट जॉर्ज

के.ए. शाजी

चेन्नई में सत्ता के केन्द्र को फोर्ट सेंट जॉर्ज से किसी नए ठिकाने पर ले जाने का ताजा प्रस्ताव शुरुआती दौर में ही विवादों में घिर गया है। 17वीं सदी में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा बनाए गए इस ऐतिहासिक किले को बाद में मद्रास प्रेसीडेंसी और तमिलनाडु के राजनीतिक मुख्यालय में तब्दील कर दिया गया था।

सत्ता संभालने के फौरन बाद मुख्यमंत्री सी. जोसेफ विजय ने यह रुख अपनाया कि फोर्ट सेंट जॉर्ज की ऐतिहासिक विरासत से जुड़ी कानूनी पाबंदियों के चलते मौजूदा सचिवालय का न तो विस्तार किया जा सकता है और न ही इसका आधुनिकीकरण मुमकिन है। इस परिसर का एक बड़ा हिस्सा केन्द्रीय रक्षा मंत्रालय के अधीन है, जबकि दूसरा भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (एएसआई) के नियंत्रण में आता है। 3 सितंबर को जोसेफ विजय सरकार ने शहर के मशहूर मरीना बीच के किनारे स्थित फोरशोर एस्टेट-जिसका तमिल नाम पट्टिनापाक्कम है- में एक नई विधानसभा और सचिवालय परिसर के निर्माण का प्रस्ताव रखा। यह प्रस्तावित नया परिसर 25.55 एकड़ में फैला होगा, जिसमें 20 लाख वर्ग फुट का निर्माण क्षेत्र होगा और इसकी अनुमानित लागत करीब 1,200 करोड़ रुपये होगी।

मुख्यमंत्री विजय द्वारा विधानसभा में घोषित यह योजना इसलिए विवादों के घेरे में आ गई है, क्योंकि प्रस्तावित नई जगह सीधे तौर पर पर्यावरण और स्थानीय लोगों की आजीविका पर सवाल खड़े करती है। विवाद के केन्द्र में यह सवाल हैः क्या नए सचिवालय का निर्माण समुद्र के ठीक मुहाने पर होना चाहिए, जहां यह बेहद संवेदनशील समुद्री पारिस्थितिकी और पास में रहने वाले मछुआरा समुदायों की रोजी-रोटी को सीधे खतरे में डालता है?

साल 1639 में स्थापित फोर्ट सेंट जॉर्ज वह केन्द्र रहा है जिसके इर्द-गिर्द औपनिवेशिक काल का मद्रास शहर फला-फूला। आजादी के बाद यह तमिलनाडु की विधायिका और सरकार का स्थायी ठिकाना बन गया। मद्रास लेजिस्लेटिव काउंसिल की बैठकें 1921 में यहीं शुरू हुई थीं, और दशकों तक यह विधानसभा कक्ष राज्य के सबसे ऐतिहासिक और युगांतरकारी राजनीतिक फैसलों का गवाह बना रहा।

साल 2010 में एम. करुणानिधि की द्रमुक सरकार ने भी फोर्ट सेंट जॉर्ज में जगह की कमी का यही हवाला देते हुए विधानसभा को ओमंदुरार गवर्नमेंट एस्टेट परिसर में स्थानांतरित कर दिया था। लेकिन 2011 में सत्ता में लौटते ही जे. जयललिता ने विधानसभा और सचिवालय को दोबारा फोर्ट सेंट जॉर्ज में समेट दिया, और ओमंदुरार परिसर को एक बड़े सुपर-स्पेशियलिटी सरकारी अस्पताल में तब्दील कर दिया गया।

पट्टिनापाक्कम ही क्यों?

फोरशोर एस्टेट यानी पट्टिनापाक्कम आम सरकारी जमीन का टुकड़ा नहीं। यह मरीना समुद्र तट के दक्षिणी छोर पर स्थित है और पारंपरिक मछुआरा समुदायों की पुरानी तटीय बस्ती है। पट्टिनापाक्कम और श्रीनिवासपुरम की इन बस्तियों में बसे मछुआरा परिवारों का इस जमीन से एक गहरा और अलग तरह का नाता है। उन्होंने पुराने दस्तावेज पेश करते हुए 1957 के एक सरकारी आदेश का हवाला दिया है, जिसमें इस जमीन के कई हिस्से मूल रूप से एक पुनर्वास योजना के तहत मुल्लिकुप्पम के मछुआरा परिवारों से लिए गए थे। उनका तर्क है कि उनके समुदाय से एक खास मकसद के लिए अधिग्रहित की गई जमीन को अब सरकार 'अतिरिक्त जमीन' मानकर उस पर विशाल प्रशासनिक परिसर खड़ा करने का खेल नहीं कर सकती।

मछुआरों के लिए समुद्र तक सीधी पहुंच सबसे बड़ी चिंता है। मरीना का यह तट नौकाओं को उतारने, जाल की मरम्मत, मछली छांटने, सुखाने और स्थानीय व्यापार का केंद्र है। परिवारों का कहना है कि सुरक्षा बंदोबस्त और सड़कें उनकी आजीविका छीन लेंगी। शहरी विस्तार की वजह से ये जगहें पहले ही काफी सिकुड़ चुकी हैं, और मछुआरों ने दो-टूक चेतावनी दी है कि अगर इस परियोजना को तुरंत रद्द नहीं किया गया तो वे सड़कों पर उतरकर व्यापक विरोध-प्रदर्शन करेंगे।

द्रमुक प्रमुख एम.के. स्टालिन ने मछुआरों के हक में खुलकर आवाज उठाई है और धमकी दी है कि अगर स्थानीय लोगों की चिंताओं का समाधान किए बिना सरकार आगे बढ़ी, तो बड़ा जनांदोलन छेड़ा जाएगा।

चेन्नई के जाने-माने पर्यावरण संगठन 'पूवुलगिन ननबरगल' (फ्रेंड्स ऑफ द अर्थ) के जी. सुंदरराजन ने 'संडे नवजीवन' से बातचीत में कहा कि इन चिंताओं को कतई खारिज नहीं किया जा सकता। उन्होंने कहा, 'सरकार को कोई भी अंतिम फैसला लेने से पहले तटीय पारिस्थितिकी, समुद्री जीव विज्ञान, आपदा प्रबंधन और आजीविका के विशेषज्ञों से एक स्वतंत्र व निष्पक्ष अध्ययन कराना चाहिए।' उनका जोर था कि किसी भी बड़े निर्माण कार्य से पहले यह तय किया जाना जरूरी है कि इससे मछुआरों की समुद्र तक पहुंच, नावों की पार्किंग, जाल सुखाने, समुद्री पारिस्थितिकी, जल-निकासी और चक्रवात, बाढ़ और समुद्र का जलस्तर बढ़ने जैसे खतरों पर क्या असर पड़ेगा। मद्रास हाईकोर्ट के पूर्व न्यायाधीश जस्टिस के. चंद्रू ने भी इस परियोजना पर ऐसे ही गंभीर सवाल खड़े किए हैं।

सचिवालय को पट्टिनापाक्कम ले जाने की प्रस्तावित योजना का विरोध करते मछुआरे

तमिलगा वेत्री कझगम (टीवीके) सरकार का तर्क है कि आधुनिक सचिवालय की जरूरतों के लिहाज से न तो फोर्ट सेंट जॉर्ज पर्याप्त है और न चेन्नई में उपलब्ध अन्य सरकारी जगह मुफीद हैं। प्रशासनिक जरूरतों का तर्क अपनी जगह वाजिब हो सकता है, लेकिन एक बड़े सचिवालय की जरूरत का कतई यह मतलब नहीं है कि पट्टिनापाक्कम ही उसके लिए एकमात्र और सही जगह बन जाए।

ऐसा लगता है कि सचिवालय को समुद्र किनारे ले जाने का यह फैसला अभी पत्थर की लकीर नहीं बना है। 8 सितंबर को विजय सरकार ने फोरशोर एस्टेट के प्रस्ताव को सैद्धांतिक मंजूरी जरूर दी थी, लेकिन चौतरफा विरोध के बाद उसने स्पष्ट किया है कि इसपर अंतिम निर्णय लेना अभी बाकी है। बताया जा रहा है कि अंतिम फैसले से पहले एक विस्तृत परियोजना रिपोर्ट (डीपीआर) और तकनीकी व्यवहार्यता अध्ययन कराया जाएगा, और सरकार अन्य वैकल्पिक स्थानों की भी तलाश कर रही है।

इस बीच, अपनी आजीविका पर मंडराते संकट को देखते हुए मछुआरों ने मद्रास हाईकोर्ट का दरवाजा खटखटाया है। याचिका में 8 सितंबर के सरकारी आदेश को चुनौती दी गई है, जिसमें मछुआरों के पारंपरिक अधिकारों के हनन, तटीय विनियमन क्षेत्र (सीआरजेड) के नियमों के खुले उल्लंघन और नाजुक समुद्री पर्यावरण पर पड़ने वाले विनाशकारी प्रभावों को आधार बनाया गया है। ■

संडे नवजीवन
रविवार, 27 सितंबर, 2026 Iwww.navjivanindia.com

राज्य 360° पंजाब

वारिस पंजाब दे और भाजपा की एकल उड़ान

आगामी विधानसभा चुनाव से पहले अमृतपाल के पंथिक तेवरों और अकाली दल की छटपटाहट के बीच भाजपा की डफली

असम के डिब्रूगढ़ जेल में बंद अमृतपाल सिंह के पिता तरसेम सिंह आने वाले विधानसभा चुनावों से पहले 'वारिस पंजाब दे' की गतिविधियों पर नज़र रखे हुए हैं

हरजेश्वर पाल सिंह

सुखबीर बादल 'वारिस पंजाब दे' (पंजाब के वारिस) को 'वायरस पंजाब दे' कहते हैं। चुनाव से पहले उनका यह हमला इस नए संगठन के उन दावों की वजह से है, जिनमें वह खुद को पंथ और सूबे के हितों का असली पहरेदार बता रहा है। वहीं, वारिस के नेता शिरोमणि अकाली दल (शिअद) को बिकाऊ बताते हैं- जिसने केन्द्रीय कैबिनेट में जगह के लिए भाजपा से हाथ मिलाया। वह पंजाब यूनिवर्सिटी कैंपस स्टूडेंट्स काउंसिल चुनावों का भी हवाला देते हैं, जहां अकाली दल की छात्र इकाई ने आरएसएस से जुड़े एबीवीपी का साथ दिया था।

एक ऐसे दल के लिए जिसका मुखिया अमृतपाल सिंह डिब्रूगढ़ जेल में बंद हो, यह जबर्दस्त सियासी हलचल है। 29 जुलाई को वारिस के कार्यकर्ताओं ने अमृतपाल और अन्य 'बंदी सिंहों' की रिहाई की मांग को लेकर मुख्यमंत्री आवास का घेराव किया। शाम ढलते-ढलते वॉटर कैनन और टूटते बैरिकेड्स के वीडियो फेसबुक और वाट्सएप पर वायरल हो रहे थे।

दो साल पुराने इस संगठन का सबसे बड़ा सियासी दांव हालिया दल-बदल रहा। दाखा से बागी अकाली विधायक मनप्रीत अयाली- जो 2022 में अकाली दल के टिकट पर जीतने वाले गिने-चुने विधायकों में थे- जून 2026 में संगठन में शामिल हो गए। अयाली को किसी मान-मनौव्वल की जरूरत नहीं थीः उनके अपने पंचायत और जिला परिषद के उम्मीदवार पहले ही अमृतपाल की तस्वीरों के सहारे प्रचार कर रहे थे।

वारिस ने सबसे पहले अपने उम्मीदवारों की सूची जारी कर चौंका दिया है। अमृतपाल के करीबी पप्पलप्रीत सिंह को मजीठा से अकाली क्षत्रप बिक्रम मजीठिया के गढ़ में उतारा गया है, जो किसी चुनावी जोड़-तोड़ से ज्यादा एक प्रतीकात्मक सियासी चुनौती है। संस्थापक और 'शहीद' दीप सिद्धू के भाई मनदीप सिंह सिद्धू को तलवंडी साबो से टिकट मिला है, ताकि उस उपनाम को भुनाया जा सके जो आज भी भीड़ जुटाने का माद्दा रखता है। मौड़ सीट लक्खा सिधाना की झोली में गई। गैंगस्टर से सामाजिक कार्यकर्ता बने सिधाना का सफर सिधाना गांव से लेकर किसान आंदोलन और मुख्यधारा की सियासत तक फैला है, जो यह समझने के लिए काफी है कि ग्रामीण पंजाब में जुर्म, अस्मिता और आंदोलन कैसे एक-दूसरे का हाथ थामे रहते हैं।

इस पूरी कवायद की रीढ़ एक ऐसा नारा है जिसे नशे के दलदल में धंसे राज्य के लिए गढ़ा गया हैः 'अमृतपाल ले आओ, नशा भगाओ'। यह किसी नीति से ज्यादा एक भावनात्मक अरदास जैसी लगती है, लेकिन ग्रामीण पंजाब में आज भी अरदास के नाम पर वोट पड़ते हैं।

वारिस की असली पूंजी वह भावनात्मक उबाल है जो सिख युवाओं की उस पीढ़ी में दौड़ रहा है, जो मानती है कि इतिहास ने उसके साथ दोहरा छल किया हैः पहले उग्रवाद की हार और फिर उस हार से अकालियों का मुकरना। अमृतपाल गांवों में मसीहा जैसी शख्स बन चुके हैं। जेल की सजा ने उन्हें 'त्याग' का आभामंडल दे दिया है। इसमें सोशल मीडिया का हुनर, एनआरआई समर्थन और ग्रामीण माझा व मालवा के कुछ इलाकों में मजबूत पकड़ जोड़ लीजिए तो ऐसा जमावड़ा तैयार दिखता है जो सिख भावनाओं को सुलगाने की क्षमता रखता है।

सिक्के का दूसरा पहलू यह है कि वारिस पंजाब दे के पास कोई परखा हुआ काडर नहीं और रोजाना के कामकाज के लिए तरसेम सिंह और चंद करीबियों के अलावा कुछ खास नहीं। संगठन का एक राजनीतिक दल के रूप में पंजीकरण तक नहीं हुआ है। अभी से ही उसपर एक और वंशवादी संगठन बनके आरोप लग रहे हैं। पूर्व उग्रवादियों के परिजनों और सुधरे हुए गैंगस्टरों से भरी उसकी उम्मीदवारों की सूची गलियों और चौपालों में उसकी साख भले बढ़ाती हो, लेकिन शहरी ड्राइंग रूम को यह कतई रास नहीं आ रहा। शहरी, हिन्दू और दलित मतदाता फिलहाल इससे दूर हैं।

तमाम दागों-बेअदबी का कलंक, नशे के आरोप और वारिस पंजाब दे और आप की तरफ टकसाली नेताओं के लगातार पलायन- के बावजूद अकाली दल पंजाब का अकेला पंथिक दल है जिसके पास सत्ता संभालने का तजुर्बा है। उसका शताब्दी पुराना संगठन, सुखबीर बादल का आक्रामक नेतृत्व और ग्रामीण मालवा में गहरी पैठ उसे जमीनी आधार देती है। हालिया उपचुनावों और स्थानीय निकायों के नतीजे बताते हैं कि पार्टी किसी चमत्कारिक वापसी के बजाय धीमी राह पर आगे बढ़ रही है।

अपने पारंपरिक पंथिक वोटबैंक पर खतरा मंडराता देख सुखबीर बादल ने हालिया रैलियों में तोप का मुंह वारिस की तरफ मोड़ दिया है। 2026 में पंजाब की पंथिक सियासत की विडंबना यही हैः जिस पार्टी को हर कोई मृत घोषित करना चाहता है, वह दम तोड़ने से इनकार कर रही है; जबकि जिस दल को लेकर हर तरफ कौतूहल है, उसे अभी यह साबित करना बाकी है कि वह अपने पैरों पर खड़ा होकर चल भी सकता है या नहीं।

अलग-थलग भाजपा

साल 1996 के बाद पहली बार भाजपा ने संकेत दिया है कि वह 2027 का विधानसभा चुनाव अकेले लड़ेगी। सभी 117 सीटों पर ताल ठोकने के फैसले को कुछ लोग 2017 में आप के चुनावी पदार्पण के बाद पंजाब का सबसे बड़ा राजनीतिक जुआ मान रहे हैं; वहीं, कुछ इसे औकात से बड़ी महत्वाकांक्षा बता रहे हैं। जो भी हो, पंजाब के सियासी बाजार में एक नई और शोरगुल भरी दुकान सज चुकी है।

भाजपा की पूरी रणनीति अपराध, भ्रष्टाचार और 'चिट्टा' (ड्रग्स) पर टिकी है। उसकी 'नशा मुक्त पंजाब यात्रा' कंडी बेल्ट के पठानकोट से शुरू होकर फतेहगढ़ साहिब होते हुए मालवा के कपास और नशे के गलियारे तलवंडी साबो तक जाती है, जिसमें राजसी ठाठ-बाठ जोड़ने के लिए पटियाला को भी शामिल किया गया है। यह रूट बेहद चालाकी से चुना गया है। नशा अकेला मुद्दा है जिस पर जाट हो या दलित, सिख हो या हिन्दू, पंजाब का हर परिवार पूरी तरह सहमत दिखता है। हालांकि, यह यात्रा विवादों में है; फतेहगढ़ साहिब, समराला और दीनानगर में इसे काले झंडे दिखाए गए, जबकि बटाला में पूर्व केन्द्रीय मंत्री रवनीत बिट्टू के काफिले पर पथराव तक हुआ।

भाजपा पंजाब की सुस्त 6.1 प्रतिशत की विकास दर के मुकाबले हरियाणा के 9.5 प्रतिशत के विकास मॉडल को पेश कर रही है। उसकी मुफ्त रेवड़ियों का पिटारा ऐसा तैयार किया गया है जो आम आदमी पार्टी की सीधी नकल न लगे, मगर दिलकश दिखेः महिलाओं के लिए 2,100 रुपये की 'लाडो लक्ष्मी' योजना, मुफ्त डायलिसिस, जरूरतमंद परिवारों को 500 रुपये में एलपीजी सिलेंडर और फसलों के एक बड़े दायरे पर एमएसपी की कानूनी गारंटी। सीधा संदेश हैः 'आ के देखो, पड़ोसी हरियाणा कितना बढ़िया चल रहा है'।

साल 2020 में अकाली दल से नाता टूटने के बाद भाजपा ने अपना वोट शेयर दोगुना कर लिया है। मोदी-केंद्रित ध्रुवीकरण ने उसे शहरी पंजाब, तलहटी के इलाकों और दक्षिण-पश्चिम पंजाब में एक सीमित पर ठोस हिन्दू जनाधार दिया है। केन्द्र के असीमित संसाधन, एक कामकाजी सांगठनिक ढांचा और एक विश्वसनीय विकल्प के तौर पर अकाली दल के लगभग सफाए ने जो खालीपन पैदा किया है, उसे भरने के लिए भाजपा हिन्दुओं और शहरी दलितों के बीच खुद को सबसे मुफीद मान रही है।

हरियाणा के मुख्यमंत्री नायब सिंह सैनी पार्टी के सबसे कारगर चुनावी चेहरे हैं। एक ओबीसी किसान के बेटे के तौर पर सैनी वह जमीन मुहैया कराते हैं जो पंजाब भाजपा के पास कभी नहीं थी। वह किसानों से उनकी अपनी बोली-बानी में संवाद करते हैं, जिससे भाजपा पर लगने वाला 'शहरी हिन्दू पार्टी' का ठप्पा कमजोर पड़ता है।

पंजाब का बहुलतावादी ताना-बाना और भगवा दल के मुस्लिम व पाकिस्तान-विरोधी एजेंडे से उसका सहज अलगाव, राज्य को भाजपा के लिए लोहे का चना बना देता है। जाट-बहुल ग्रामीण पंजाब भाजपा की अपीलों से लगभग अछूता है। तीन काले कृषि कानूनों के गहरे जख्म ताजा हैं। नवजोत सिद्धू विवाद के कड़वे अंत के बाद से भाजपा के पास कोई करिश्माई सिख चेहरा नहीं बचा।

आरएसएस के खिलाफ पंजाब का कट्टर पंथिक नजरिया भी बेहद कड़ा है। पार्टी का अपना पारंपरिक काडर कांग्रेस और अकाली दल के थके-हारे नेताओं के थोक आयात से खासा नाराज है। हाल ही में नियुक्त प्रदेश अध्यक्ष केवल सिंह ढिल्लों किसी जनाधार वाले नेता या संगठनकर्ता के बजाय पर्दे के पीछे गोटियां बिठाने वाले सिपहसालार ज्यादा हैं। एक ऐसे राज्य में जहां पहचान कथित 'विकास' पर भारी पड़ती है, भाजपा आज भी अजनबी जैसी दिखती है।

यह स्थिति उस बुनियादी सवाल पर ले आती है जिसकी चर्चा से सब बच रहे हैं - क्या 2027 से पहले शिअद के साथ पुरानी जोड़ी दोबारा जिंदा होगी? अकेले चुनाव लड़ने का फैसला भाजपा को अपनी जमीन नापने और मजबूरी के बजाय सौदेबाजी की मजबूत स्थिति से बात करने का मौका देता है। यदि उसकी यह एकल उड़ान औंधे मुंह गिरती है, तो चुनाव के आखिरी दौर में सुलह और एक बेबस अकाली दल की मेज पर वापसी की उम्मीद की जा सकती है। ■

> वारिस की असली पूंजी वह भावनात्मक उबाल है जो सिख युवाओं की उस पीढ़ी में दौड़ रहा है जो मानती है कि इतिहास ने उसके साथ दोहरा छल किया है

पंजाब में भाजपा की मदद के लिए आगे आए हरियाणा के मुख्यमंत्री नायब सिंह सैनी

हरजेश्वर पाल सिंह एसजीजीएस कॉलेज, चंडीगढ़ में इतिहास के प्राध्यापक हैं

राज्य 360° उत्तर प्रदेश

बुलडोज़र की उलटी पड़ती चाल और हताशा

मिनी बंदोपाध्याय

उत्तर प्रदेश में यह नजारा अब आम है कि जब भी भाजपा का कोई बड़ा नेता आता है, उसके स्वागत में हाईवे पर जीसीबी बुलडोज़रों की लाइन लगा दी जाती है। 21-22 सितंबर को पार्टी अध्यक्ष नितिन नवीन के मेरठ और सहारनपुर दौरे के समय भी ऐसा ही हुआ। उनका काफिला मेरठ में दाखिल होते ही एक टोल प्लाज़ा पर जब उन पर फूल बरसे, वह ख़ासे खुश दिखे। अलग बात है कि स्वागत का यह अंदाज मेरठ के भाजपा समर्थकों के बीच काफी नाराज़गी भी पैदा कर गया, क्योंकि वहां तो बुलडोज़र इन दिनों 'अवैध' व्यावसायिक इमारतों को ढहाने वाले अभियान में जुटे हुए हैं। नाराज़गी का मामला नवीन तक भी पहुंचा और यही कारण रहा कि अगले दिन उनका काफिला सहारनपुर पहुंचा तो जेसीबी के 'गार्ड ऑफ़ ऑनर' के सामने बिना रुके तेज़ी से गुज़र गया।

सुप्रीम कोर्ट ने 2024 में शास्त्री नगर के सेंट्रल मार्केट की ऐसी 44 रिहायशी सम्पत्तियां गिराने का आदेश दिया था, जिनका व्यावसायिक इस्तेमाल हो रहा था। इनमें से कुछ सील कर दिए गए और कुछ को गिरा दिया गया। जुलाई 2026 में, सुप्रीम कोर्ट को बताया गया कि भवन संबंधी नियमों का उल्लंघन करने वाले ऐसे व्यावसायिक प्रतिष्ठानों की संख्या 859 तक हो सकती है। लेकिन सितंबर में एक ही सर्वे ज़ोन में 'अवैध निर्माण' की संख्या बढ़कर 16,726 पहुंच गई। सुप्रीम कोर्ट ने ऐसी सम्पत्तियां सील करने का आदेश दिया जिनमें से ज़्यादातर का इस्तेमाल स्कूल, नर्सिंग होम, ज्वेलरी और मिठाई की दुकानों और आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्गों के लिए बने घर के तौर पर किया जा रहा था।

हुआ यह कि बिना कानूनी मंज़ूरी के रिहायशी सम्पत्ति के व्यावसायिक इस्तेमाल, अनधिकृत निर्माण और अनिवार्य रूप से खाली छोड़ी जाने वाली जगहों (सेटबैक एरिया) पर अतिक्रमण के मामलों की पहचान की गई। अदालत ने महज इस आधार पर उन्हें नियमित करने से इनकार कर दिया कि वे निर्माण काफ़ी पुराने थे या अधिकारियों ने पहले कार्रवाई नहीं की थी। जस्टिस जे.बी. पारदीवाला और जस्टिस के.वी. विश्वनाथन की बेंच ने कहा कि अवैध निर्माण हमेशा अवैध ही रहते हैं, चाहे कितने भी पुराने क्यों न हों।

हालांकि पारंपरिक रूप से भाजपा समर्थक रहे व्यापारी और कारोबारी सरकार द्वारा उनके हितों और निवेश की सुरक्षा न कर पाने से ख़ासे नाराज़ हैं, लेकिन अधिकारियों का कहना है कि वे कोर्ट के आदेश से बंधे हुए हैं। लोग अब सवाल पूछने लगे हैं कि यह 'बुलडोज़री न्याय' कब और कहां जाकर विराम लेगा? यूपी में कहीं भी अवैध या अनधिकृत निर्माण कोई नई बात नहीं, और अगर मेरठ में इसी तरह तोड़-फोड़ चली तो बाकी स्थानों पर यह किस तर्क से आधार रुकेगा यह सवाल लोगों को परेशान कर रहा है?

सही है कि राज्य में बुलडोज़र की मार अब तक मुख्य रूप से मुसलमानों, मस्जिदों और कथित अपराधियों पर ही पड़ती रही है, लेकिन सुप्रीम कोर्ट के आदेश का असर इसके 'उपयोग' और 'दुरुपयोग' के लिहाज़ से खासे दूरगामी नतीजों वाला हो सकता है। अधिकारी भी मानते हैं कि इसके लिए बस नगर निकायों से अवैध और अनधिकृत निर्माणों के बारे में आरटीआई के जरिये जानकारी हासिल करनी होती है और फिर उन्हें गिराने को अदालत में याचिका दायर करनी होती है। अब तक जो लोग मस्जिदों, मज़ारों और मुसलमानों की संपत्तियों को लक्षित कर गिराए जाने का जश्न मना रहे थे, इस बात से डरे हुए हैं कि योगी आदित्यनाथ का 'बुलडोज़र जस्टिस' कहीं अब उन पर ही भारी न पड़ जाए।

> अब तक जो लोग मस्जिदों, मज़ारों और मुसलमानों की संपत्तियों को लक्षित कर गिराए जाने का जश्न मना रहे थे, डरे हुए हैं। लोग पूछने लगे हैं: बुलडोज़र कहां रुकेंगे?

भाजपा नेता नितिन नवीन का बुलडोज़र से पारंपरिक स्वागत समर्थकों को पसंद नहीं आया, क्योंकि मेरठ में हुई तोड़-फोड़ से वे अभी भी नाराज़ हैं

क्या सब कुछ ठीक नहीं है?

भाजपा के अंदरूनी सूत्रों का कहना है कि उत्तर प्रदेश में एसआईआर के दौरान बड़ी संख्या में भाजपा समर्थकों के नाम वोटर लिस्ट से हटा दिए गए हैं। एक मंत्री का कहना था कि समाजवादी पार्टी के बूथ लेवल एजेंट (बीएलए) यह सुनिश्चित करने की दिशा में कहीं बेहतर काम कर गए कि इस प्रक्रिया में मुस्लिम वोटरों के नाम हटने न पाएं। उनका दावा है कि मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ भी इससे नाराज़ हैं, और यही वजह है कि भाजपा कार्यकर्ताओं से 'नए वोटरों' का रजिस्ट्रेशन तेज़ करने और इसके लिए फॉर्म 6 और फॉर्म 6A भरने को कहा जा रहा है। उन्हें उम्मीद है कि 2027 के विधानसभा चुनाव से पहले हालात ठीक हो जाएंगे।

यह बात अब जाने-अनजाने चर्चा में है कि भाजपा के लिए 2027 के चुनाव जीतना आसान नहीं होगा। पार्टी को सत्ता-विरोधी लहर के साथ हवा में आए ठहराव या माहौल में उपजी निराशा से निपटना होगा। आरएसएस ने लखनऊ की समन्वय बैठक में इस पर 'चिंतन' भी किया है, जिसमें चार चिंताएं प्रमुख थीं। भाजपा के विधायकों और स्थानीय नेताओं के प्रति लोगों में नाराज़गी बढ़ रही है। पार्टी कार्यकर्ता निराश और नाखुश हैं; और इसके पीछे महंगाई, बेरोजगारी और अयोध्या में राम मंदिर के लिए इकट्ठा किए गए चंदे में हेराफेरी जैसे कारण हैं, और यह भी कि अधिकारी और पुलिस अब पार्टी विधायकों और कार्यकर्ताओं की बात पहले की तरह नहीं सुनते। बैठक में सरकारी दफ्तरों में भ्रष्टाचार और 'जेन-ज़ी' के साथ बढ़ती दूरी का मुद्दा भी उठा।

लेकिन आरएसएस का भाजपा के लिए संदेश बहुत साफ थाः "आपसी मतभेदों और शिकायतों को भूलकर चुनाव की तैयारियों में जुट जाइए।" ■

‘ग्रेट आर्क’ नहीं, नाकामी होगी ट्रंप की पहचान

ईरान के ख़िलाफ़ उनके ‘हमेशा चलने वाले युद्ध’ का असर ही उनकी असली पहचान बनेगा

आकार पटेल

फोटो: जेटी इमेजेज

डॉनल्ड ट्रंप हार नहीं मान सकते और इस युद्ध में जीत संभव नहीं। उनके सामने सिर्फ़ बुरे और उससे भी बुरे विकल्प हैं

अमेरिका के वॉशिंगटन डीसी में बनने वाले डॉनल्ड ट्रंप आर्क (मेहराब) का काम इस महीने शुरू हो रहा है। इसे पेरिस के ‘आर्क डी ट्रायम्फ’ की तर्ज पर बनाया जा रहा है, जिसकी ऊंचाई 250 फुट होगी। वैसे तो इस मेहराब को अमेरिका की इंग्लैंड से आज़ादी के 250 साल पूरे होने की याद में बनाया जा रहा है, लेकिन असल में यह ट्रंप का स्मारक होगा।

ट्रंप खुद को अमेरिकी इतिहास का सबसे महान राष्ट्रपति मानते हैं और इसके दो कारण हैं। पहला कारण राजनीतिक है। ट्रंप एक बाहरी व्यक्ति थे जिन्होंने 10 साल पहले रिपब्लिकन पार्टी पर कब्ज़ा किया और उस पर अपनी पकड़ बनाए रखी है। अमेरिका की दोनों पार्टियां ‘प्राइमरी’ कहे जाने वाले आंतरिक चुनावों के आधार पर अपने उम्मीदवार चुनती हैं। जिन लोगों को ट्रंप सार्वजनिक रूप से समर्थन देते हैं, उनके रिपब्लिकन प्रतिद्वंद्वियों को हराने की संभावना 9 से फीसद से ज्यादा होती है। रिपब्लिकन वोटरों के लिए ऐसे लोगों की नीतियों या पृष्ठभूमि से ज़्यादा ट्रंप के प्रति उनकी सार्वजनिक वफ़ादारी मायने रखती है। इसी वजह से पार्टी पर ट्रंप का नियंत्रण बना हुआ है।

इसे एक बड़ी उपलब्धि कहा जा सकता है क्योंकि रिपब्लिकन खुद को वैचारिक और कंज़र्वेटिव मानते हैं, जबकि ट्रंप इनमें से कुछ भी नहीं हैं। कोई यह तर्क दे सकता है कि इस वैचारिक दिखावे के पीछे वे हमेशा से कट्टरपंथी थे और ट्रंप ने बस उस दिखावे को हटा दिया है। यह बात शायद सच है, लेकिन हमें उन्हें इस उपलब्धि का श्रेय तो देना ही चाहिए, क्योंकि यह सच है। आज रिपब्लिकन पार्टी, ट्रंप की पार्टी है।

पार्टी और संगठन पर पकड़ के बूते ट्रंप ने तीन चुनाव लड़े और दो में जीत हासिल की। 2024 की दूसरी जीत वाकई हैरान करने वाली थी, खासकर इसलिए क्योंकि अपने पहले कार्यकाल के आखिर में हिंसा भड़काने के बाद उन्हें बुरी तरह और सही वजहों से उनकी तीखी आलोचना हुई थी। इसलिए उनकी यह पहली उपलब्धि थी।

वह इसे ज़रूरी नहीं कि अपनी महानता की वजह के तौर पर पेश करते हों, लेकिन ट्रंप पर जानलेवा हमले की एक कोशिश और दो अन्य नाकाम हमले हो चुके हैं। मुमकिन है कि इससे उन्हें खुद के इतिहास का हिस्सा होने का एहसास भी होता हो।

अपनी दूसरी उपलब्धि वह अपनी गवर्नेंस यानी शासन-व्यवस्था बताते हैं। वह इमिग्रेशन (आप्रवासी मामले) और अर्थव्यवस्था के मोर्चे पर अपनी सफलता का ज़िक्र करते हैं। भारतीय लोग इमिग्रेशन से जुड़े उनके कदमों से वाकिफ़ हैं: जैसे बिना कागज़ात वाले लोगों को जेल में डालना, बेड़ियों में जकड़ना और देश से बाहर निकालना; अमेरिकी शहरों में आईसीई जैसी एजेंसी को खुली छूट देना और एच1बी वीज़ा सिस्टम पर हमला करना।

> ट्रंप का नाम खामेनेई की हत्या और वैश्विक अफ़रा-तफ़री से जुड़ा रहेगा। ईरान से युद्ध ऐसी रणनीतिक नाकामी है, जैसी न तो अफ़ग़ानिस्तान में हुई थी और न ही वियतनाम में

आर्थिक मोर्चे पर सफलता को लेकर उनका दावा रिकॉर्ड ऊंचाई पर पहुंचे शेयर बाज़ार, टैरिफ़ नीति, एआई में बड़ी कंपनियों के लगातार निवेश और बेरोज़गारी दर में गिरावट आदि पर आधारित है। वैसे तो इन मोर्चों पर हकीकत या सही स्थिति अभी पूरी तरह साफ़ नहीं है, लेकिन समय के साथ यह स्पष्ट हो जाएगी। उनके कार्यकाल में अभी भी दो साल बाकी हैं।

अगर हम उनकी उपलब्धियों को इन्हीं दो मामलों तक सीमित रखें, तो हो सकता है कि वह अमेरिकी राजनीति के सबसे सफल नेताओं में से एक के तौर पर सामने आएं। वह एक ऐसी अलग सोच वाले नेता हैं जिन्होंने किसी भी दूसरे नेता के मुकाबले एक बड़ी पार्टी पर सबसे ज़्यादा दबदबा बनाए रखा और जो तकनीक की सबसे असाधारण क्रांति के समय सत्ता में थे। इस लिहाज़ से, वॉशिंगटन, जेफ़रसन और लिंकन की तरह राजधानी में ट्रंप का भी कोई स्मारक होना कोई अजीब बात नहीं होगी।

पर, दुर्भाग्य से, उनकी पहचान इन चीज़ों से नहीं होगी और उन्हें यह पहले से पता है। ट्रंप का नाम हमेशा अयातुल्ला खामेनेई की हत्या और उसके बाद फैली वैश्विक अफ़रा-तफ़री से जुड़ा रहेगा। ईरान में युद्ध एक ऐसी रणनीतिक नाकामी है, जैसी न तो अफ़ग़ानिस्तान में हुई थी और न ही वियतनाम में। उन दोनों हार के बाद जब अमेरिकी सेनाएं लौटीं, तो वे एक ऐसे देश में वापस आईं जिसकी ताक़त और प्रभाव में कोई कमी नहीं आई थी।

ईरान के साथ युद्ध का मामला अलग है। मैं इस बेवकूफी भरे युद्ध से दुनिया की अर्थव्यवस्था को हुए नुकसान की बात नहीं कर रहा हूं, वह एक अलग बात है। ऊर्जा की कीमतें शायद आखिरकार कम हो जाएंगी, कम-से-कम इसलिए तो ज़रूर कि रिन्यूएबल एनर्जी (नवीकरणीय ऊर्जा) भी अब फॉसिल फ्यूल (जीवाश्म ईंधन) की तरह ही सुविधाजनक होती जा रही है। यह बात तो साफ है कि चीन और उसके इनोवेशन इस दशक और अगले दशक में दुनिया को पेट्रोलियम उत्पादों से दूर जाने के लिए मजबूर कर देंगे।

ट्रंप ने अनजाने में ही सही, लेकिन अमेरिका की विशाल रणनीति को नुकसान तो पहुंचाया है। खाड़ी क्षेत्र में अमेरिका की मौजूदगी पर भी इसका बुरा असर पड़ा है। अमेरिकी मीडिया में ईरानी मिसाइलों और ड्रोन्स से तबाह हुए अमेरिकी ठिकानों की जो तस्वीरें सामने आईं, उनसे दुनिया को वह बात पता चल गई जो खाड़ी देश पहले से ही जानते थे। भविष्य में सऊदी अरब, बहरीन, कुवैत, कतर और यूएई ऐसी सैन्य ताकत पर निर्भर नहीं रहेंगे जो ईरान से खुद की रक्षा न कर सके। जॉर्डन भी इस समय बुरी तरह प्रभावित हो रहा है।

खाड़ी क्षेत्र में अमेरिकी सैन्य अड्डों के नेटवर्क की वजह से अमेरिका अपनी नौसेना को आसानी से ज़रूरी सामान और ईंधन पहुंचा पाता था, जो फिलहाल और अब मुमकिन नहीं है। ईरान की घेराबंदी करने वाले जहाज़ों में ईंधन भरने के लिए उसे हज़ारों किलोमीटर दूर स्थित एक द्वीप पर निर्भर रहना पड़ता है।

प्रशांत क्षेत्र में अमेरिका के सहयोगियों ने खाड़ी क्षेत्र में भी उसकी नाकामी को देखा है। ताइवान, जापान, फिलीपींस और कोरिया की सुरक्षा के लिए तैनात अमेरिकी एयरक्राफ्ट कैरियर (जंगी जहाज) को चीन के इलाके से दूर दूसरी जगहों पर तैनात किया गया है।

यूरोप से सेना हटाने की ट्रंप की धमकियां अभी तक हकीकत में नहीं बदली हैं। लेकिन सिर्फ़ इस इरादे के ज़ाहिर होने से ही रिश्ते हमेशा के लिए बदल गए हैं।

पूरी दुनिया और उसके देशों के लिए, अब अमेरिका की बात का उतना वज़न नहीं रहा। खुद उसके राष्ट्रपति के हस्ताक्षर वाली शांति संधि का लगभग तुरंत ही उल्लंघन कर दिया गया। वह हार स्वीकार नहीं कर सकता और उसे जीतना नहीं आता। उसके सामने केवल बेहद बुरे और बदतर विकल्प हैं।

ट्रंप की भाषा में इनमें से कुछ भी दिखाई नहीं देता, जैसा कि किसी ढोंगी से उम्मीद की जा सकती है। 10 मार्च को उन्होंने कहा, “युद्ध लगभग पूरी तरह खत्म हो चुका है।” असल में यह खत्म नहीं हुआ है, बल्कि यह वही चीज़ बन गया है जिसके खिलाफ़ ट्रंप ने अपने तीनों राष्ट्रपति चुनावों में प्रचार किया था, और वह है: एक कभी न खत्म होने वाला युद्ध।

वियतनाम के आखिर तक इस मामले में लिंडन जॉनसन इतने अलोकप्रिय हो गए थे कि — नागरिक अधिकारों के क्षेत्र में अपनी बड़ी उपलब्धियों के बावजूद — उन्होंने दोबारा चुनाव न लड़ने का फ़ैसला किया था। ज़ाहिर है, ट्रंप के पास यह विकल्प नहीं है क्योंकि उनके कार्यकाल की सीमा तय है। उन्हें रिटायर होना ही है, लेकिन उनके राष्ट्रपति-काल की स्थायी पहचान यह मेहराब या ट्रंप आर्क नहीं, बल्कि ईरान के मामले में उनके कदम में उनकी नाकामी का स्मारक होगी। ■

घटिया कोयले की वजह से मिल रही महंगी बिजली

पंकज चतुर्वेदी

अब बिजली ज्यादा जगह पहुंच रही और ज्यादा समय तक रह रही है, लेकिन यह महंगी भी होती जा रही है। इसके साथ दुखद पहलू यह भी है, जिसकी चर्चा नहीं के बराबर होती है, कि इसके लिए उपयोग किए जाने वाला कोयला खराब गुणवत्ता का होता है जिसकी खपत ज्यादा है; यह बिजली अपेक्षाकृत कम पैदा करती है, राख ज्यादा उगलती है जिससे पर्यावरण को गंभीर हानि पहुंच रही है। मतलब, बॉयलर में जितना कोयला झोंका जाता है, उसके अनुपात में उतनी बिजली नहीं बन पाती, जबकि चिमनी और तालाबों में जमा होने वाली राख की मात्रा लगातार बढ़ती जा रही है।

इसे दो ताजा उदाहरणों से समझा जा सकता है। हाल ही में तेलंगाना ऊर्जा विभाग ने खुलासा किया कि सिंगरेनी कोलियरीज से मिल रहे घटिया कोयले के कारण राज्य के ताप बिजली घरों को पिछले 27 महीनों में लगभग 9,593 मिलियन यूनिट बिजली उत्पादन का नुकसान हुआ और इससे राज्य को करीब 2,900 करोड़ रुपये की आर्थिक क्षति उठानी पड़ी।

मध्य प्रदेश के ताप बिजलीघरों में भी यही रुझान स्पष्ट दिखता है। केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण के आंकड़ों के अनुसार, 31 अगस्त 2026 तक राज्य के 14 ताप बिजलीघरों में कुल 67.87 लाख टन कोयला भंडार पर्याप्त मात्रा में मौजूद था - सबसे ज्यादा विंध्याचल और सासन में - फिर भी, अप्रैल से जून 2026 के बीच कोयले का सकल ऊष्मीय मान (ग्रॉस कैलोरॉफिक वैल्यू या जीसीवी) लगातार घटता गया। जीसीवी का मतलब है: 1 किलोग्राम कोयले के पूरी तरह जलने पर उससे निकलने वाली कुल ऊष्मा ऊर्जा की मात्रा। खंडवा के श्री सिंगाजी ताप बिजलीघर की दूसरी चरण की इकाइयों में तीन महीनों में ऊष्मीय मान 3,659 से घटकर 3,367 किलोकैलोरी प्रति किलोग्राम रह गया, यानी 292 किलोकैलोरी की गिरावट, और पहली चरण की इकाइयों में भी यह मान अप्रैल के 3,678 से घटकर जून में 3,443 किलोकैलोरी रह गया। सतपुड़ा और अमरकंटक विस्तार की नई इकाइयों में भी क्रमशः 3,869 से घटकर 3,725 तथा 4,010 से घटकर 3,973 किलोकैलोरी तक की गिरावट दर्ज हुई। यानी कोयले का भंडार पर्याप्त होने के बावजूद उसकी गुणवत्ता में यह निरंतर गिरावट बिजलीघरों की उत्पादन दक्षता के लिए बड़ी चुनौती बनी हुई है, क्योंकि कम ऊष्मीय मान की भरपाई के लिए अधिक कोयला जलाना पड़ता है।

देश के अधिकांश ताप बिजली घरों में यही समस्या किसी-न-किसी रूप में मौजूद है। भारत में इस्तेमाल होने वाला अधिकांश कोयला ‘गैर-कोकिंग’ श्रेणी का है, जो बॉयलर चलाने के लिए इस्तेमाल होता है, और इसकी सबसे बड़ी समस्या इसमें मौजूद राख की ऊंची मात्रा है। जहां आयातित, यानी इंडोनेशियाई या दक्षिण अफ्रीकी कोयले में राख की मात्रा सामान्यतः 10 से 15 प्रतिशत के आसपास रहती है, वहीं घरेलू भारतीय कोयले में यह 30 से 45 प्रतिशत तक पहुंच जाती है। इसके साथ ही भारतीय कोयले का कैलोरी मान भी अपेक्षाकृत कम, आमतौर पर 3,000 से 4,000 किलोकैलोरी प्रति किलोग्राम के दायरे में रहता है, जबकि अच्छी गुणवत्ता के आयातित कोयले का कैलोरी मान 5,500 से 6,000 किलोकैलोरी प्रति किलोग्राम तक होता है। तेलंगाना के मामले में भी यही देखा गया - सिंगरेनी से आपूर्ति किया गया कोयला जिस ग्रेड का बताया गया, जलने पर वह उससे कहीं निम्न गुणवत्ता का साबित हुआ। तेलंगाना जेनको ने सिंगरेनी कोलियरीज को लिखे पत्र में बताया कि आपूर्ति किए जा रहे निम्न ग्रेड कोयले का वास्तविक कैलोरी मान महज 2,800 से 3,400 किलोकैलोरी प्रति किलोग्राम है, जबकि संयंत्रों की डिजाइन आवश्यकता 4,375 किलोकैलोरी प्रति किलोग्राम है। स्थिति की गंभीरता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि सितंबर में जेनको को कुल कोयले का केवल 26 प्रतिशत ही उच्च ग्रेड में मिला, और अक्तूबर के मध्य तक यह हिस्सा घटकर मात्र 13 प्रतिशत रह गया।

समाधान केवल कोयला आपूर्ति बदलने में नहीं, बल्कि दीर्घकाल में स्वच्छ ऊर्जा स्रोतों की ओर तेजी से बढ़ने में है

भारतीय कोयला घटिया क्यों?

भारत का अधिकांश कोयला, करीब 90 प्रतिशत, लगभग 25 करोड़ वर्ष पुरानी गोंडवाना चट्टानों से प्राप्त होता है। यह कोयला ‘ड्रिफ्ट-मूल’ प्रकार का है, यानी वनस्पति अवशेष नदी-प्रवाह के साथ बहकर जमा हुए, जिसके साथ रेत, मिट्टी और अन्य खनिज कण भी मिश्रित हो गए।

भारतीय कोयला भंडार अपेक्षाकृत उथली गहराई पर, पतली और अनियमित परतों में स्थित हैं, और खुली खदान खनन के दौरान इन परतों के साथ ऊपर-नीचे की मिट्टी और शेल की परतें भी अनिवार्य रूप से मिश्रित हो जाती हैं, जिससे राख की मात्रा और बढ़ जाती है। देश में उत्खनित कुल कोयले का बड़ा हिस्सा बिना धुलाई के सीधे बिजली घरों को भेज दिया जाता है, क्योंकि वाशरी क्षमता मांग से काफी कम है, जबकि धुलाई प्रक्रिया से राख और मिट्टी के कण काफी हद तक अलग किए जा सकते हैं। इसके साथ ही खुली खदानों और भंडारण स्थलों पर भारत की उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु (ट्रॉपिकल मॉनसून क्लाइमेट) के कारण कोयले में नमी की मात्रा भी बढ़ जाती है, जिससे प्रभावी कैलोरी मान और घट जाता है।

जब बॉयलर में अधिक राख और कम कैलोरी मान वाला कोयला डाला जाता है, तो दहन की दक्षता घट जाती है, और संयंत्र को समान मात्रा में बिजली बनाने के लिए कहीं अधिक कोयला जलाना पड़ता है। विशेषज्ञों के अनुसार, घटिया कोयले पर निर्भर संयंत्रों में यह खपत सामान्य से 15 से 20 प्रतिशत तक अधिक हो सकती है। इसके साथ ही बॉयलर ट्यूबों में राख की परत जमने से ऊष्मा स्थानांतरण बाधित होता है, उपकरणों पर घर्षण बढ़ता है और उनकी उम्र घटती है, तथा प्लांट लोड फैक्टर, यानी संयंत्र की वास्तविक उत्पादन क्षमता में गिरावट आती है। तेलंगाना जेनको के अनुसार, घटिया कोयले से हीट रेट और सहायक ऊर्जा खपत भी बढ़ जाती है, संयंत्रों को आंशिक भार पर चलाना पड़ता है, राज्य विद्युत नियामक आयोग के मानकों का पालन प्रभावित होता है, और उच्च राख सामग्री के कारण राख निपटान प्रणाली पर भी अतिरिक्त बोझ पड़ता है।

> पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने 1999 में ही राख के 100 प्रतिशत उपयोग का निर्देश जारी किया है, हर साल लाखों मिलियन टन राख को निचले इलाकों और राख तालाबों में डंप कर दिया जाता है

बिजली दर पर असर

चूंकि बिजली दरों में ईंधन लागत का बड़ा हिस्सा कोयले की कीमत से जुड़ा होता है, और यह लागत सीधे उपभोक्ताओं पर डाल दी जाती है, इसलिए घटिया कोयले की पूरी आर्थिक कीमत अंततः बिजली उपभोक्ता ही चुकाता है। प्रयास एनर्जी ग्रुप के एक अध्ययन के अनुसार, ‘बिल किए गए’ और वास्तव में ‘जलाए गए’ कोयले के कैलोरी मान में अक्सर बड़ा अंतर पाया जाता है, जो सिर्फ मापन पद्धति, परिवहन या भंडारण में होने वाली सामान्य क्षति से कहीं अधिक होता है। महाराष्ट्र राज्य विद्युत उत्पादन कंपनी के कुछ मामलों में यह अंतर 1,200 किलोकैलोरी प्रति किलोग्राम तक पाया गया, जिससे कच्चे कोयले की कीमत पर करीब 61 प्रतिशत तक का अतिरिक्त बोझ पड़ा, और एनटीपीसी के संयंत्रों में वित्त वर्ष 2018 से 2022 के आंकड़ों के विश्लेषण में भी लगातार करीब एक ग्रेड की गिरावट पाई गई, जिसके कारण वित्त वर्ष 2022 में प्रति टन लगभग 69 रुपये यानी 8.34 प्रतिशत का अतिरिक्त भुगतान करना पड़ा। अध्ययन के अनुसार, कोयले की गुणवत्ता मापने की प्रक्रिया को स्वचालित और छेड़छाड़-रहित बनाकर तथा गणना का आधार बदलकर महाराष्ट्र के राज्य ताप बिजलीघरों की ऊर्जा लागत में लगभग 13 प्रतिशत तक की कमी लाई जा सकती है।

बढ़ती राख की समस्या

केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण के आंकड़ों के अनुसार, भारत में लगभग 71 प्रतिशत बिजली आज भी कोयला आधारित ताप संयंत्रों से बनती है, और देश के करीब 180 ताप संयंत्रों की कुल क्षमता 212 गीगावाट है। एक विश्लेषण के अनुसार, अप्रैल 2023 से 2024 के बीच बिजली उत्पादन के लिए लगभग 29.18 लाख मिलियन टन कोयला जलाया गया, जिससे लगभग 11.67 लाख टन फ्लाई ऐश और बॉटम ऐश उत्पन्न हुई, और इसमें से करीब 8.35 लाख मिलियन टन राख को निचले इलाकों और राख तालाबों में डंप कर दिया गया, जबकि पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा 1999 में ही राख के 100 प्रतिशत उपयोग का निर्देश जारी किया जा चुका है।

मध्य प्रदेश के झाबुआ जैसे कई इलाकों में तो कोयले की राख सामग्री 30 से 40 प्रतिशत तक पाई गई है, जिससे बनने वाली विशाल मात्रा में राख आसपास के गांवों में स्वास्थ्य और पर्यावरण के लिए गंभीर खतरा बन चुकी है। सूखी राख हवा में उड़कर सूक्ष्म कणों के रूप में फैलती है, जिससे सांस संबंधी बीमारियां बढ़ती हैं। राख तालाबों से रिसकर पारा, आर्सेनिक, सीसा और कैडमियम जैसी भारी धातुएं भूजल और आसपास की कृषि भूमि में मिल जाती हैं, जिससे मिट्टी की उर्वरता घटती है और फसलें प्रभावित होती हैं। कम कैलोरी मान के कारण प्रति यूनिट बिजली उत्पादन में अधिक कोयला जलाना पड़ता है, जिससे प्रति मेगावाट कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन भी बढ़ जाता है, यानी घटिया कोयला जलवायु परिवर्तन को भी अप्रत्यक्ष रूप से तेज करता है।

इन सबका समाधान केवल कोयला आपूर्ति बदलने में नहीं, बल्कि कोयला धुलाई क्षमता बढ़ाने, राख के औद्योगिक पुनर्उपयोग, यानी सीमेंट, ईंट और सड़क निर्माण में इसके इस्तेमाल को अनिवार्य रूप से लागू कराने, तथा दीर्घकाल में स्वच्छ ऊर्जा स्रोतों की ओर तेजी से बढ़ने में है। जब तक ये कदम गंभीरता से नहीं उठाए जाते, तब तक अधिक कोयला, कम बिजली और ज्यादा राख का यह दुष्चक्र देश के ऊर्जा और पर्यावरण दोनों क्षेत्रों को नुकसान पहुंचाता रहेगा। ■

पश्चिम एशिया पर फिर मंडराते युद्ध के बादल

अशोक स्वैन

हूतियों (ऊपर) का फिर से उभरना यमन के गृहयुद्ध के दोबारा शुरू होने से कहीं ज़्यादा है। यह अमेरिका-ईरान युद्ध के अगले दौर की आहट है

लाल सागर के किनारे हूतियों की तेज बढ़त, बाब अल-मंदाब जलडमरूमध्य पर उनका नियंत्रण और सऊदी अरब पर मिसाइल एवं ड्रोन हमलों ने ईरान और अमेरिका के बीच भड़कते टकराव में नया मोर्चा खोल दिया है। यह यमन गृहयुद्ध का दोहराव भर नहीं है; यह अमेरिका-ईरान युद्ध के अगले खूनी दौर का संकेत है, और डॉनल्ड ट्रंप इस आग से बेहद खतरनाक सियासी खेल खेल रहे हैं।

युद्ध के शुरुआती महीनों में हूती लड़ाके सीधे टकराव से दूर रहे, जबकि हिजबुल्ला और इराक में मौजूद ईरान-समर्थक गुट लड़ाई में कूद पड़े थे। लेकिन संयम का वह दौर खत्म हो चुका है। हूतियों ने यमन के पश्चिमी तट के रणनीतिक रूप से अहम इलाकों पर तेजी से कब्जा जमाया है और बाब अल-मंदाब के आसपास अपनी पकड़ बेहद मजबूत कर ली है- यह वही जलमार्ग है जिससे होकर सामान्य दिनों में दुनिया के कुल व्यापार का करीब 10 फीसद हिस्सा गुजरता है। उन्होंने सऊदी जहाजों पर हमले बोले हैं और रियाद, यानबू समेत इस रेगिस्तानी मुल्क के अन्य ठिकानों पर मिसाइलें एवं ड्रोन दागे हैं।

भौगोलिक परिस्थितियों ने संकट को और भयावह बना दिया है। ईरान पहले ही होर्मुज जलडमरूमध्य से होने वाली जहाजों की आवाजाही को अस्त-व्यस्त कर चुका है। सऊदी अरब ने इसके जवाब में अपनी 'ईस्ट-वेस्ट पाइपलाइन' पर निर्भरता बढ़ा दी थी, जो पूर्वी तेल क्षेत्रों से कच्चे तेल को पूरे देश के आर-पार लाल सागर तट पर स्थित यानबू तक पहुंचाती है। लेकिन अब यह वैकल्पिक मार्ग भी खतरे की जद में है। इस पाइपलाइन पर हमले हुए हैं और हूती अब बाब अल-मंदाब से गुजरने वाले सऊदी तेल टैंकरों को निशाना बनाने की कहीं ज्यादा मजबूत स्थिति में आ गए हैं।

इस तरह सऊदी अरब अपने पूर्वी और पश्चिमी दोनों तेल-निर्यात मार्गों पर एक साथ भारी दबाव और घेराबंदी का सामना कर रहा है। इसके बावजूद, उसका सबसे बड़ा 'सुरक्षा के बदले तेल' वाला ऐतिहासिक साझेदार अमेरिका हाथ पर हाथ धरे खड़ा है। वह खुफिया जानकारियां तो दे रहा है, लेकिन ट्रंप ने सीधे सैन्य हस्तक्षेप से इनकार कर दिया है। इसके साथ ही, वाशिंगटन ओमान के जरिये हूतियों से गुप्त बातचीत में जुटा है। हूतियों ने अमेरिका को भरोसा दिलाया है कि उसके जहाजों पर हमले नहीं होंगे और उनका निशाना सिर्फ सऊदी अरब है। रियाद के हुक्मरानों के लिए यह स्थिति बेहद बेचैन करने वाली और पीठ में छुरा खाने जैसी है।

सऊदी अरब में अमेरिकी सैन्य ठिकाने हैं, वह अमेरिकी हथियारों का सबसे बड़ा खरीदार है और उसने अपनी पूरी राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीति वाशिंगटन के साथ रिश्तों की धुरी पर खड़ी की। लेकिन ट्रंप का अपना चुनावी गणित है, जिसमें वह अमेरिका में होने वाले मध्यावधि चुनावों के ऐन पहले युद्ध का नया मोर्चा खोलने के सियासी नुकसान का नफा-नुकसान तौल रहे हैं। वैसे भी, ट्रंप के नजरिये में बीते कल हुए समझौते आज की राह में अड़ंगा नहीं बन सकते।

क्राउन प्रिंस मोहम्मद बिन सलमान इस कड़वी हकीकत को बखूबी जानते हैं। साल 2019 में जब अबकैक स्थित सऊदी तेल प्रतिष्ठानों पर ड्रोन हमले हुए थे, तब भी ट्रंप ने सैन्य मदद से मना कर दिया था। उस कड़वे तजुर्बे ने ही रियाद को तेहरान के साथ संबंध सुधारने और अपनी सुरक्षा साझेदारियों का दायरा बढ़ाने के लिए मजबूर किया था।

> ट्रंप का अपने ही पुराने सहयोगी को असुरक्षा की आग में झोंक देना ताकि वह डरकर अपनी कूटनीतिक निष्ठाएं बदल ले एक जोखिम भरा दांव है

सऊदी अरब देख रहा है कि अमेरिकी सुरक्षा गारंटी का व्यवहार में कोई मतलब नहीं रहा। ट्रंप ने खाड़ी सहयोगियों को ईरान के साथ युद्ध के खौफनाक नतीजों से अकेले निपटने के लिए छोड़ दिया है। हूतियों के खिलाफ सीधे युद्ध में न कूदने के उसके फैसले के पीछे गहरा सियासी गणित काम कर रहा है। इसराइल में 27 अक्तूबर को आम चुनाव होने हैं। नेतन्याहू कड़े मुकाबले में फंसे हैं। उनकी राजनीतिक पहचान और प्रासंगिकता इस दावे पर टिकी है कि केवल उनके पास ही ईरान से टकराने और इस अशांत क्षेत्र में इसराइल को महफूज रखने का संकल्प और तजुर्बा है।

हूतियों के खिलाफ सीधे उतरने से ट्रंप की यह हिचकिचाहट सऊदी अरब पर दबाव बढ़ाती है कि वह सैन्य मदद के लिए कहीं और नजरें दौड़ाए। इसराइल के पास वह खुफिया तंत्र, वायुसेना और मिसाइल-रोधी रक्षा क्षमताएं हैं जिनकी रियाद को सख्त दरकार है। अगर सऊदी अरब हूतियों के खिलाफ इसराइल से मदद मांगने को मजबूर होता है, तो नेतन्याहू इस सहयोग को इस बात के सबूत के तौर पर भुना सकते हैं कि समूचे क्षेत्र की सुरक्षा के लिए इसराइल अपरिहार्य हो चुका है।

ट्रंप की रणनीति चुनावी समय के एक दूसरे पहलू पर भी टिकी है। ईरान युद्ध अमेरिका में बेहद अलोकप्रिय हो चुका है और यही वजह है कि घरेलू मोर्चे पर ट्रंप की अपनी लोकप्रियता रसातल में पहुंच गई है। पश्चिम एशिया में युद्ध के मोर्चे को और फैलाना नवंबर में होने वाले मध्यावधि चुनावों में उनकी पहले से धुंधली संभावनाओं को और गर्त में धकेलना होगा। इसलिए वह फिलहाल कदम पीछे खींच रहे हैं, लेकिन उन्हें यह कहते सुना गया है कि ईरान संघर्ष मध्यावधि चुनावों के 'तुरंत बाद' खत्म हो जाएगा। इसका सीधा मतलब यह है कि वह युद्ध की आंच को दोबारा भड़काने के लिए शायद चुनावों के गुजरने का इंतजार कर सकते हैं।

बहरहाल, ईरान एक और बड़े दौर के लिए कमर कसता दिख रहा है; उसके पास यह मानने के पुख्ता कारण हैं कि ट्रंप कूटनीति का रास्ता चुनेंगे या अपने वादों का सम्मान करेंगे, इस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। हालांकि पाकिस्तान और कतर के जरिये कुछ राजनयिक चैनल अब भी खुले हैं, लेकिन ईरान के सैन्य नेतृत्व ने सख्त चेतावनी दी है कि नए अमेरिकी हमलों का जवाब समूचे क्षेत्र में अमेरिकी हितों पर बड़े पैमाने पर जवाबी तबाही से दिया जाएगा।

हूती केवल ईरान के हाथों में नाचने वाली कठपुतली नहीं हैं। उनकी अपनी कट्टर विचारधारा, घरेलू जनाधार और स्वतंत्र रणनीतिक मकसद हैं। लेकिन उनके इस आक्रामक अभियान से तेहरान की सौदेबाजी की ताकत निसंदेह कई गुना बढ़ गई है। खबरें हैं कि सऊदी अरब के पास मिसाइल-रोधी इंटरसेप्टर हथियारों का टोटा पड़ गया है और उसने ब्रिटेन, फ्रांस, पाकिस्तान तथा मिस्र से फौरी इमदाद मांगी है। खुद अमेरिका का अपना हथियारों का जखीरा महीनों से चल रहे युद्ध के कारण दबाव में आ चुका है।

मोहम्मद बिन सलमान इस युद्ध की तबाही की कीमत को अच्छी तरह समझते हैं। सऊदी अरब के आर्थिक कायाकल्प का उनका खाका 'विजन 2030' पूरी तरह राजनीतिक स्थिरता, विदेशी निवेश और तेल के निर्बाध व भरोसेमंद निर्यात पर निर्भर है। ईरान के साथ सुलह, यमन में सऊदी दखल को समेटना और देश के सुरक्षा ढांचे की नए सिरे से ओवरहालिंग-ये सब उसी क्षेत्रीय युद्ध को टालने की कोशिशें थीं जो उनके आर्थिक सपनों को चकनाचूर कर सकता है।

तमाम सावधानियों के बावजूद सऊदी अरब खुद को अकेला और असुरक्षित पा रहा है। यहां तक कि तुर्किए और पाकिस्तान के साथ उसके नए सुरक्षा समझौतों (मक्का पैक्ट) से भी कोई ठोस सैन्य सुरक्षा छतरी नहीं मिल सकी है। खाड़ी में ईरान रियाद पर दबाव बना सकता है; और दूसरे छोर पर यमन से हूती उसे कभी भी दहला सकते हैं। वाशिंगटन सीधे तौर पर मैदान में उतरने से इनकार कर रहा है। ऐसे हालात सऊदी अरब को इसराइल से मदद मांगने को मजबूर करते हैं।

नेतन्याहू का इसमें साफ राजनीतिक स्वार्थ है कि वह यह दिखा सकें कि इसराइल के साथ हाथ मिलाने से ही अरब सरकारों को ईरान और उसके सहयोगियों से सुरक्षा मिल सकती है। लेकिन इसराइल से सीधी सैन्य सहायता स्वीकार करना एमबीएस के लिए ऐसा सियासी बारूदी मैदान है जहां कदम-कदम पर खतरा है। खासकर जब फिलिस्तीन का सवाल अरब जनता के जेहन में हो, तो इसराइल के पाले में खड़े दिखना तुर्किए और पाकिस्तान के साथ सऊदी अरब की साझेदारियों को हमेशा के लिए तबाह कर सकता है।

ट्रंप का यह खतरनाक और कुटिल खेल हो सकता है कि एमबीएस को मजबूरन इसराइल की झोली में धकेल दिया जाए। अपने ही एक पुराने सहयोगी को जान-बूझकर असुरक्षा की आग में झोंक देना ताकि वह डरकर कूटनीतिक निष्ठाएं बदल ले-यह जोखिम भरा दांव है। वाशिंगटन इस दबाव से भड़कने वाले अनपेक्षित नतीजों को कभी पूरी तरह नियंत्रित नहीं कर पाएगा। ■

अशोक स्वैन स्वीडन की उप्सला यूनिवर्सिटी में पीस एंड कॉन्फ्लिक्ट रिसर्च के प्रोफेसर हैं

महात्मा गांधी का रास्ता और फासीवादी समय की चुनौती

क्या गांधी का रास्ता आज के समय में राजनीतिक प्रतिरोध की शक्ति बन सकता है?

शैलेंद्र चौहान

गांधी जयंती आते ही गांधी फिर हमारे बीच उपस्थित हो जाते हैं। सरकारी समारोहों में, विज्ञापनों में, विद्यालयों के आयोजनों में, नेताओं के भाषणों में और सोशल मीडिया पर उनके उद्धरणों में। कुछ समय के लिए गांधी सार्वजनिक स्मृति का हिस्सा बन जाते हैं। लेकिन जिस गांधी को हम याद करते हैं, वह अक्सर इतना सुविधाजनक होता है कि उससे कोई असुविधाजनक सवाल पैदा नहीं होता।

गांधी का असली महत्व शायद वहीं से शुरू होता है, जहां उनकी तस्वीर समाप्त होती है। आज जब लोकतांत्रिक समाजों में सत्ता के केन्द्रीकरण, असहमति के प्रति असहिष्णुता, राजनीतिक ध्रुवीकरण, भय के विस्तार और प्रचार की बढ़ती शक्ति को लेकर गंभीर चिंताएं हैं, गांधी को केवल अहिंसा के प्रतीक के रूप में याद करना पर्याप्त नहीं है। प्रश्न यह है कि जब सत्ता नागरिक से केवल आज्ञाकारिता चाहती हो, जब असहमति को संदेह की दृष्टि से देखा जाने लगे, जब संस्थाएं धीरे-धीरे अपनी स्वतंत्रता खोने लगें और जब समाज का एक हिस्सा दूसरे हिस्से को शत्रु समझने लगे, तब गांधी का रास्ता क्या कहता है? और उससे भी कठिन प्रश्न यह है कि क्या गांधी का रास्ता ऐसे समय में राजनीतिक प्रतिरोध की शक्ति बन सकता है?

फासीवाद को केवल किसी एक ऐतिहासिक शासन-व्यवस्था या किसी एक नेता के नाम से समझना पर्याप्त नहीं। उसकी पहचान उन प्रवृत्तियों में भी की जा सकती है जिनमें सत्ता के प्रति अंधनिष्ठा, नेता-केन्द्रित राजनीति, असहमति का दमन, भय और घृणा का राजनीतिक इस्तेमाल, झूठे या अतिरंजित शत्रु का निर्माण, संस्थाओं का क्षरण और नागरिक स्वतंत्रताओं पर लगातार दबाव शामिल होते हैं। हर अधिनायकवादी प्रवृत्ति को फासीवाद कहना भी राजनीतिक विश्लेषण को कमजोर करता है, लेकिन फासीवादी प्रवृत्तियों को केवल इसलिए नजरअंदाज करना कि चुनाव होते हैं, उससे भी बड़ी भूल है।

लोकतंत्र केवल चुनाव का नाम नहीं है। चुनाव लोकतंत्र की एक आवश्यक प्रक्रिया हैं, उसका पूरा अर्थ नहीं। गांधी का राजनीतिक महत्व इसी बिंदु पर सामने आता है। उन्होंने सत्ता को केवल शासक की शक्ति के रूप में नहीं देखा। उन्होंने यह समझने की कोशिश की कि कोई सत्ता टिकती कैसे है। शासन करने वाले के पास पुलिस, सेना, कानून और प्रशासन हो सकते हैं, लेकिन वह समाज के सहयोग के बिना लंबे समय तक शासन नहीं कर सकता। नागरिक जब आदेश को आदेश मानना बंद कर देता है, जब अन्यायपूर्ण व्यवस्था में सहयोग से इनकार करता है, जब भय के बावजूद सार्वजनिक रूप से असहमति व्यक्त करता है, तब सत्ता की शक्ति की बुनियाद पर प्रश्न उठता है।

गांधी के सत्याग्रह की सबसे बड़ी राजनीतिक खोज यही थी। सत्याग्रह का अर्थ केवल उपवास, धरना या शांतिपूर्ण प्रदर्शन नहीं था। वह सत्य के आग्रह से आगे जाकर अन्यायपूर्ण सत्ता के साथ सहयोग न करने की पद्धति थी। असहयोग, सविनय अवज्ञा, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, कर न देने जैसे राजनीतिक कदम इसी व्यापक दृष्टि का हिस्सा थे। गांधी समझते थे कि साम्राज्य केवल शासक की ताकत से नहीं चलता; उसे शासित समाज के किसी न किसी स्तर के सहयोग की आवश्यकता होती है।

इसलिए उन्होंने प्रतिरोध को हथियारों से पहले नागरिक के विवेक का प्रश्न बनाया। यह बात आज भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। किसी सत्ता की ताकत केवल इस बात से तय नहीं होती कि उसके पास कितनी पुलिस है, कितने कानून हैं या कितने संचार माध्यम उसके प्रभाव में हैं। वास्तविक शक्ति इसमें भी छिपी होती है कि समाज कितना भयभीत है, कितना विभाजित है और कितना आसानी से उसके कथनों को स्वीकार कर लेता है।

फासीवादी राजनीति के लिए यह स्थिति विशेष रूप से अनुकूल होती है। भयभीत नागरिक प्रश्न नहीं करता। विभाजित समाज एक-दूसरे पर निगाह रखता है। प्रचार से घिरा समाज धीरे-धीरे यह भूलने लगता है कि सत्ता के बाहर भी कोई सत्य हो सकता है। गांधी का प्रतिरोध इस मनःस्थिति के विरुद्ध था। लेकिन यहां गांधी को लेकर एक भ्रम से बचना होगा। अहिंसा कोई जादुई राजनीतिक तकनीक नहीं है। मान लेना कि हर दमनकारी सत्ता अहिंसक आंदोलन के सामने झुक जाएगी, इतिहास की जटिलता को सरल बना देना होगा।

गांधी जिस ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे, वह निश्चित ही औपनिवेशिक और हिंसक सत्ता थी। जलियांवाला बाग इसका भयावह प्रमाण था। असंख्य लोग जेल गए, गोलियाँ चलीं, दमन हुआ। फिर भी उस सत्ता की अपनी कुछ सीमाएं थीं। ब्रिटेन में संसद थी, प्रेस था, राजनीतिक विरोध की परंपरा थी और साम्राज्य को अपनी नैतिक वैधता का दावा करना पड़ता था। भारतीय आंदोलन का प्रभाव भारत की सीमाओं के बाहर भी पड़ता था। ब्रिटिश शासन को यह भी महसूस करना पड़ता था कि वह जिस लोकतांत्रिक और सभ्य राजनीतिक परंपरा का दावा करता है, उसके सामने उसकी औपनिवेशिक हिंसा लगातार कटघरे में खड़ी हो रही है।

फासीवादी सत्ता का चरित्र इससे कहीं अधिक कठोर हो सकता है। वह अपने विरोधियों को केवल राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी नहीं मानती; वह उन्हें राष्ट्र, समाज या सभ्यता के शत्रु के रूप में प्रस्तुत कर सकती है। ऐसी सत्ता पर नैतिक तर्क का प्रभाव सीमित हो सकता है। वह सत्याग्रही की पीड़ा को कमजोरी और उसकी अहिंसा को भय समझ सकती है। इसलिए गांधी के रास्ते को इतिहास से काटकर देखना खतरनाक है। लेकिन इसका यह अर्थ भी नहीं कि फासीवादी समय में गांधी अप्रासंगिक हो जाते हैं। बल्कि इसके विपरीत, ऐसे समय में गांधी की राजनीति को अधिक गहराई से समझने की आवश्यकता होती है।

> अगर हम लोकतंत्र को बचाने की कोशिश में लोकतांत्रिक तरीका ही छोड़ दें, तो असल में हमने क्या बचाया?

गांधी की अहिंसा का पहला अर्थ हिंसा न करना नहीं, बल्कि मनुष्य को साधन में बदलने से इनकार करना है। प्रतिरोध के दौरान भी प्रतिद्वंद्वी को मनुष्य मानना, उसके विनाश को लक्ष्य न बनाना, स्वयं को भी सत्ता की हिंसक भाषा में बदलने से बचाना—यह गांधी की कठिन नैतिक मांग थी।

यहां गांधी आज के समय से टकराते हैं। आज राजनीतिक संघर्षों में भाषा तेजी से कठोर हुई है। विरोधी को असहमति रखने वाला नागरिक मानने के बजाय शत्रु मान लेना आसान हो गया है। सोशल मीडिया ने इस प्रवृत्ति को और तीखा किया है। राजनीतिक बहस धीरे-धीरे तर्क से पहचान की लड़ाई में बदल जाती है। हम यह पूछने के बजाय कि सामने वाला क्या कह रहा है, पहले यह तय कर लेते हैं कि वह किस पक्ष का है।

फासीवादी राजनीति इसी मनोविज्ञान से शक्ति प्राप्त करती है। उसे ऐसे नागरिक चाहिए जो पहले समूह की पहचान में सोचें और बाद में मनुष्य के रूप में। उसे समाज में ऐसी रेखाएं चाहिए जिनके दोनों ओर भय और घृणा लगातार बढ़ती रहे। इसलिए फासीवाद का प्रतिरोध केवल सत्ता के विरुद्ध संघर्ष नहीं है; वह समाज के भीतर पैदा किए जा रहे भय और घृणा के विरुद्ध संघर्ष भी है।

गांधी का रास्ता यहां महत्वपूर्ण हो जाता है। सत्याग्रह का अर्थ है—भय के बावजूद सत्य कहना। असहयोग का अर्थ है—अन्यायपूर्ण आदेश को केवल इसलिए स्वीकार न करना कि उसे सत्ता ने जारी किया है। नागरिक अवज्ञा का अर्थ है—कानून और न्याय के बीच अंतर को पहचानना। अहिंसा का अर्थ है—प्रतिरोध करते हुए भी उस मनुष्यत्व को न खोना जिसे बचाने के लिए प्रतिरोध किया जा रहा है।

लेकिन इन सबका एक और पक्ष है, जिसे अक्सर भुला दिया जाता है—संगठन। गांधी का आंदोलन अकेले नैतिक व्यक्तियों का समूह नहीं था। उसके पीछे व्यापक जनभागीदारी थी। किसान, मजदूर, विद्यार्थी, महिलाएं, व्यापारी, पेशेवर और समाज के विभिन्न वर्ग किसी न किसी रूप में आंदोलनों से जुड़े। गांधी की राजनीतिक शक्ति उनकी व्यक्तिगत नैतिक प्रतिष्ठा से जरूर आती थी, लेकिन केवल उससे नहीं। वह जनता की भागीदारी से राजनीतिक शक्ति में बदलती थी।

यही आज के लिए सबसे महत्वपूर्ण सबक है। एक अकेला नागरिक सत्ता से प्रश्न कर सकता है, लेकिन संगठित नागरिक समाज सत्ता की संरचना को चुनौती दे सकता है। स्वतंत्र पत्रकारिता, विश्वविद्यालय, श्रमिक संगठन, किसान संगठन, नागरिक अधिकार समूह, साहित्यकार, कलाकार, वैज्ञानिक, वकील और सामाजिक कार्यकर्ता—ये सब लोकतंत्र की जीवित संस्थाएं हैं। इनका स्वतंत्र रहना किसी सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र नहीं, लोकतंत्र के पक्ष में आवश्यक शर्त है। यदि ये संस्थाएं भय के कारण चुप हो जाएं, तो लोकतंत्र का बाहरी ढांचा बचा रह सकता है, लेकिन उसकी आत्मा कमजोर होने लगती है।

इसलिए गांधी को केवल राजघाट पर खोजने के बजाय हमें उन जगहों पर देखना होगा जहां कोई व्यक्ति अकेले होकर भी अन्यायपूर्ण आदेश को मानने से इनकार करता है; जहां कोई पत्रकार दबाव के बावजूद प्रश्न पूछता है; जहां कोई शिक्षक अपने विद्यार्थियों को केवल पाठ्यक्रम नहीं, प्रश्न करना सिखाता है; जहां कोई लेखक सुविधा के बजाय असुविधाजनक सत्य को चुनता है; जहां कोई नागरिक अपने से भिन्न विचार रखने वाले व्यक्ति के अधिकार की रक्षा करता है।

गांधी जयंती पर शायद यही प्रश्न हमारे सामने होना चाहिए कि क्या हम गांधी की मूर्ति की पूजा करेंगे या उनके प्रश्नों को अपने समय में जीवित रखेंगे? क्या हम अहिंसा को केवल हिंसा की अनुपस्थिति समझेंगे या उसे अन्याय के विरुद्ध सक्रिय नागरिक प्रतिरोध के रूप में समझेंगे? क्या सत्य को व्यक्तिगत सदाचार मानेंगे या सार्वजनिक जीवन में सत्ता से सवाल करने का साहस भी?

फासीवादी समय की चुनौती केवल यह नहीं है कि सत्ता कितनी कठोर हो गई है। असली चुनौती यह है कि नागरिक कितनी जल्दी उसके कठोरपन को सामान्य मानने लगते हैं। इसलिए गांधी का रास्ता आज किसी पुराने राजनीतिक नुस्खे की तरह हमारे सामने नहीं है। वह एक कसौटी की तरह है।

गांधी जयंती पर गांधी को याद करने का इससे अधिक अर्थपूर्ण अवसर शायद नहीं हो सकता कि हम उस छोटे-से "नहीं" को पहचानें, उसकी रक्षा करें और उसे अकेला न पड़ने दें। क्योंकि किसी भी सत्ता की अंतिम शक्ति उसके पास मौजूद हथियारों में नहीं होती। वह इस विश्वास में होती है कि उसके सामने खड़ा होने वाला कोई नहीं है। और प्रतिरोध की पहली आवाज शायद वही होती है—मैं तुम्हारे अन्याय में सहभागी नहीं हूं। ■

बदहाल शिक्षा व्यवस्था और बदगुमान सरकारें

बंद हो चुके हैं देश के 94 हजार सरकारी स्कूल । उत्तर प्रदेश में 10 वर्षों में करीब 22,438 सरकारी स्कूल बंद हुए

राजेंद्र चन्द्रकान्त राय

सन् 2014 से 2024 के बीच हमारे देश के लगभग 94,000 सरकारी स्कूल या तो पूरी तरह बंद कर दिए गए हैं या फिर किसी पास वाले स्कूल में उनका विलय कर दिया गया है। यह जानकारी नीति आयोग की एक रिपोर्ट से मिलती है। इसी तरह संसद में पेश की गई केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार, उत्तर प्रदेश में पिछले 10 वर्षों में लगभग 22,438 सरकारी स्कूल बंद हो चुके हैं।

मध्यप्रदेश में 29,410 स्कूल बंद हुए हैं। यह आंकड़ा उत्तरप्रदेश जैसे बड़े राज्य में बंद होने वाले 25,126 स्कूलों से कहीं अधिक और चिंताजनक है। इन दोनों प्रदेशों में बंद होने वाले सरकारी स्कूलों की कुल संख्या देश में बंद हुए स्कूलों की कुल संख्या का पचास फीसदी से भी ज्यादा है।

अन्य राज्यों का भी यही हाल है। जम्मू-कश्मीर में सरकारी स्कूलों की संख्या 2014-15 में 23,874 से 21.4 फीसदी घटकर 18,758, ओडिशा में 58,697 से 17.1 फीसदी घटकर 48,671, अरुणाचल प्रदेश में 3,408 से 16.4 फीसदी घटकर 2,847, उत्तर प्रदेश में 1,62,228 से 15.5 फीसदी घटकर 1,37,102, झारखंड में 41,322 से 13.4 फीसदी घटकर 35,795, नागालैंड में 2,279 से 14.4 फीसदी घट कर 1,952, गोवा में 12.9 फीसदी घटकर 906 में से 789 और उत्तराखंड में 8.7 फीसदी घटकर 17,753 में से 16,201 रह गई है। महाराष्ट्र में पिछले पांच सालों में 850 स्कूलों के बंद होने की सूचना है जबकि सरकार पर दो हजार स्कूलों को बंद करने के आरोप लग रहे हैं।

यह कथन प्रचलन में है कि जब दुनिया में एक स्कूल खुलता है, तो कहीं पर एक जेल बंद होती है। तो सवाल यह है कि क्या हमने देश में चैरान्नबे हजार से भी ज्यादा जेलों के खुलने का रास्ता तैयार कर दिया है? यानी कि इतनी जेलें यानी इससे कई गुना अपराध और अपराधियों को भी पैदा करने का गुनाह कर डाला है।

सरकारी स्कूलों के बंद होने से लाखों छात्रों की शिक्षा प्रभावित हुई है। बड़े स्कूलों में छोटे स्कूलों का विलय करने से छात्रों को अपने घर से पांच से आठ किलोमीटर दूर स्थित अन्य सरकारी स्कूलों में स्थानांतरित होना पड़ा है। इससे प्राथमिक विद्यालय के बहुत से बच्चों की शिक्षा ही समाप्त हो गई है और बीच में ही पढ़ाई छोड देने की दर में भी इजाफा हुआ है। वहीं, कम उम्र में ही बच्चों के काम करने की संभावना भी बढ़ गई है।

सरकारी स्कूलों के बंद होने का सबसे ज्यादा दुष्प्रभाव लड़कियों पर पड़ा है। पिछले 5 वर्षों में लगभग 30 लाख लड़कियां स्कूल छोड़ने के लिए विवश हुईं, जबकि, कुल 65.7 लाख बच्चे अपनी पढ़ाई जारी रखने से वंचित हो गए। सबसे ज्यादा खराब स्थिति तो गुजरात में रही, जहां पर 2025 में स्कूल बीच में ही छोड़ देने वालों की तादाद 33 फीसदी रही। इसका असर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों पर भी हुआ है। सरकारी स्कूल मिड-डे मील जैसी जरूरी सामाजिक सेवाएं भी देते हैं, ताकि बच्चों को उचित पोषण मिले। सरकारी स्कूलों के बंद होने से कुपोषण दर में तेजी आने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता।

राज्यसभा सदस्य जॉन ब्रिटास द्वारा सदन में पेश की गई रिपोर्ट में बताया गया है कि 65 हजार से ज्यादा सरकारी स्कूलों में अब 10 से भी कम छात्र बचे हैं। वहीं 5 शून्य रहा है। इसका नतीजा यह हुआ कि संविदा अध्यापकों की सेवाएं समाप्त हो गईं और उनके सामने रोजगार का संकट पैदा हो गया है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम की धारा 6 के अनुसार, सरकार और स्थानीय प्राधिकारियों को बच्चों के घरों से एक निश्चित दूरी के भीतर स्कूल स्थापित करना आवश्यक है। इससे पहले नवंबर 2023 में नीति आयोग ने एक रिपोर्ट में स्कूलों के विलय, शिक्षकों की संख्या में वृद्धि और शिक्षक शिक्षा में सुधार तथा सीखने के परिणामों को बढ़ाने के लिए आवश्यक उपायों को अपनाने की सिफारिश की थी। बावजूद इसके उन पर अमल किए जाने के प्रति केन्द्र और राज्यों की ओर से निराशा ही हाथ लगी है।

जहां एक तरफ सरकारी स्कूलों के बंद होने की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है, वहीं मौजूदा स्कूलों की जरूरत को पूरा करने वाले शिक्षकों के लाखों पदों को भरे जाने के प्रति भारी सरकारी उदासीनता दिखाई पड़ रही है। 2025-2026 की अद्यतन स्थिति के अनुसार, शिक्षकों के लगभग 10 लाख पद खाली पड़े हुए हैं। संसदीय स्थाई समिति की रिपोर्ट और शिक्षा मंत्रालय से जुड़े आंकड़ों के अनुसार, केन्द्र सरकार द्वारा संचालित प्राइमरी एलिमेंट्री स्कूलों में लगभग 9 लाख पद, सेकेंडरी और हायर सेकेंडरी स्कूलों में लगभग 1.1 लाख से 4 लाख पद खाली पड़े हुए हैं। इसके अलावा केन्द्र सरकार के अधीन आने वाले केन्द्रीय विद्यालयों में लगभग 13.1 प्रतिशत और नवोदय विद्यालयों में लगभग 24.8 प्रतिशत शिक्षण पद खाली हैं।

अब जरा राज्यों की दशा भी देख ली जाए। देश के 5 प्रमुख राज्यों उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, कर्नाटक और राजस्थान में शिक्षकों के सबसे ज्यादा पद खाली पड़े हुए हैं। उत्तर प्रदेश में 81,000 से अधिक, जिसमें लगभग 77,400 पद प्राथमिक स्तर के हैं। मध्य प्रदेश में 52,019 से अधिक पद खाली हैं। कैग की रपट बताती है कि असल में 1 लाख से ज्यादा पद खाली पड़े हैं। इसी तरह झारखंड के प्राथमिक स्कूलों में लगभग 80,000 से अधिक, बिहार में प्राइमरी और सेकेंडरी स्तर पर 70,000 हजार से अधिक, कर्नाटक में 65,000 हजार से अधिक पद रिक्त हैं।

सरकारी स्कूलों के बंद होने के कई कारण हैं, जैसे छात्रों की संख्या में कमी आना, ग्रामीण इलाकों से होने वाला पलायन और जन्म दर में आया बदलाव, स्कूलों का युक्तियुक्तकरण और विलय, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत संसाधनों के बेहतर उपयोग के नाम पर कम छात्र संख्या वाले स्कूलों को पास के बड़े स्कूलों में मिलाया जाना, बुनियादी ढांचे और शिक्षकों की कमी, शिक्षा के लिए सरकारी बजट और सार्वजनिक खर्च के हिस्से में आई गिरावट और अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा तथा सरकारी स्कूलों की तुलना में बेहतर सुविधाओं वाले निजी स्कूलों के प्रति अभिभावकों का रुझान आदि हैं।

इन सभी स्थितियों के लिए अंततः सरकार ही जिम्मेदार है। पर जब भी सरकार से सवाल किया जाता है, तो उसका एक मासूम-सा जवाब होता है कि शिक्षा को समवर्ती सूची में रखा गया है, इसलिए इस मामले में राज्यों की जिम्मेदारी ही ज्यादा है। ■

फोटो: गेटी इमेजेज

सरकारी स्कूल बंद होने से लाखों छात्रों की शिक्षा प्रभावित हुई है जिसके लिए अंततः सरकार ही जिम्मेदार है

सरकारी स्कूलों के बंद होने का सबसे ज्यादा दुष्प्रभाव लड़कियों पर पड़ा है। पिछले 5 वर्षों में लगभग 30 लाख लड़कियां स्कूल छोड़ने के लिए विवश हुईं, जबकि कुल 65.7 लाख बच्चे अपनी पढ़ाई जारी रखने से वंचित हो गए

राजेंद्र चन्द्रकान्त राय जाने-माने कथाकार और एक्टिविस्ट हैं

गाद निकालने की नीति ठीक, पर नियंत्रण कैसे?

गाद प्रबंधन को गाद निकासी का आर्थिक आकर्षण वाला बाजार बनाने से रोकने का तंत्र बनाना जरूरी

कुमार कृष्णन

बिहार सरकार ने बाढ़ नियंत्रण और जल भंडारण क्षमता में बढ़ोतरी के लिए अभी 15 सितंबर को बिहार जलस्रोत पुनर्स्थापन एवं गाद प्रबंधन नीति, 2026 को मंजूरी दी है। इसमें नदियों, बराजों और जलाशयों से गाद हटाकर उनकी जलधारण और प्रवाह क्षमता बहाल करने तथा निकाली गई गाद का इस्तेमाल सड़क, रेल, सिंचाई, बाढ़ सुरक्षा और निर्माण कार्यों में भराव के रूप में करने की बातें हैं।

बिहार जैसे बाढ़ग्रस्त राज्य में ऐसी नीति की जरूरत समझ में आती है। लेकिन इस नीति को अमल में लाते समय कई किस्म की सतर्कताओं की जरूरत होगी क्योंकि नदी को नाले की तरह साफ नहीं किया जा सकता। नदी केवल पानी की धारा नहीं है, यह पानी के साथ मिट्टी, बालू, मछली, वनस्पति और जीवन लेकर चलती है। गाद भी उसी जीवन-यात्रा का हिस्सा है। वह हमेशा दुश्मन नहीं होती। कई जगह वही उपजाऊ मिट्टी बनाती है। समस्या तब पैदा होती है जब उसका संतुलन बिगड़ता है या उसका जमाव किसी खास स्थान पर बाढ़, जलजमाव अथवा प्रवाह में बाधा पैदा करता है।

इसलिए, सावधानी क्यों और कैसे जरूरी है, यह नदी और गाद को लेकर गठित विभिन्न समितियों की रिपोर्ट से समझा जा सकता है। केन्द्र सरकार ने उत्तराखंड में भीमगौड़ा से पश्चिम बंगाल के फरक्का तक गंगा में गाद प्रबंधन और ड्रेजिंग के सवाल पर 2016 में माधव चितले समिति का गठन किया था। अगले ही साल 2017 में दी गई अपनी रिपोर्ट में समिति ने साफ किया था कि गाद का क्षरण, परिवहन और जमाव अत्यंत जटिल प्रक्रियाएं हैं और ये क्षेत्र-विशेष के अनुसार बदलती हैं। इसलिए पूरे नदी तंत्र के लिए एक ही तरह का समाधान नहीं हो सकता। इसका सीधा अर्थ है - नदी में जहां गाद दिखाई दे रही है, जरूरी नहीं कि समस्या वहीं पैदा हुई हो।

गाद पहाड़ों से आ सकती है, जलग्रहण क्षेत्र से आ सकती है। जंगलों की कटाई, खेती के तौर-तरीकों, खनन, तटों के इस्तेमाल, बांधों और जलाशयों से उसका रास्ता और मात्रा बदल सकती है। नदी पानी के साथ मिट्टी लेकर चलती है और जहां प्रवाह की गति या दिशा बदलती है, वहां उसे छोड़ देती है। इसलिए गाद को देखने से पहले उसकी यात्रा देखनी होगी। गाद कहां से आई? कहां रुकी? क्यों रुकी? कितना हिस्सा आगे जाएगा? और अगर उसे यहां से निकाल दिया गया तो अगली बरसात में वह कहां जमा होगी? इन सवालों के बिना ड्रेजिंग नदी-विज्ञान नहीं, नदी पर किया गया एक प्रयोग बन सकती है।

चितले समिति ने बिना वैज्ञानिक आधार के बड़े पैमाने पर गाद निकालने के प्रति सावधान किया था। नदी तल को अचानक गहरा करने से प्रवाह, जलस्तर और तटों पर असर पड़ सकता है। कहीं कटाव बढ़ सकता है, कहीं नदी तल नीचे जा सकता है और कहीं नदी की धारा का व्यवहार बदल सकता है। इसलिए जहां वास्तव में गाद का जमाव बाढ़ या प्रवाह की समस्या पैदा कर रहा हो, वहीं वैज्ञानिक अध्ययन के बाद ड्रेजिंग की जरूरत तय होनी चाहिए। नदी को गाद से मुक्त करना और नदी को गाद के साथ जीने देना - दो अलग बातें हैं।

गंगा में गाद के सवाल को समझने के लिए अलग-अलग विशेषज्ञ समितियों और संस्थाओं के काम को एक साथ देखना जरूरी है। 2017 में केन्द्रीय जल आयोग के पूर्व अध्यक्ष ए.बी. पांड्या के नेतृत्व वाली समिति हो या उस समिति की रिपोर्ट में मतभिन्नता की वजह से 2020 में केन्द्रीय जल आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष के नेतृत्व वाली समिति हो- गंगा और इसकी सहायक नदियों में गाद जमाव की समस्या की बढ़ती गंभीरता पर जोर देती रही है। एनआईटी पटना के नदी-विज्ञान विशेषज्ञ प्रो. रामाकर झा जैसे विशेषज्ञों की भागीदारी से नदी की आकृति, प्रवाह और तलछट के परस्पर संबंध को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। नदी का नक्शा कागज पर स्थिर होता है, नदी खुद स्थिर नहीं होती।

प्रगतिशील कृषि मंच के राष्ट्रीय संयोजक किशोर जायसवाल का सवाल भी इसी जगह महत्वपूर्ण हो जाता है। उनका कहना है कि किसानों के हित में पूरी नदी से अंधाधुंध गाद निकालना समाधान नहीं है। पहले उन हिस्सों की पहचान हो जहां वास्तव में गाद निकालना जरूरी है। फिर सुरक्षित मात्रा, प्रवाह में संभावित बदलाव, दूसरे स्थानों पर कटाव का खतरा और ड्रेजिंग की अवधि तय की जाए। जायसवाल का कहना है कि गंगा की विभिन्न सहायक नदियों के जलमार्ग में बाधा डालने वाली अवसंरचना परियोजनाओं की भी जांच जरूरी है। नदी प्रणाली की पारिस्थितिकी को बहाल करने के लिए जहां जरूरी हो, वहां क्षतिपूरक उपाय भी अनिवार्य होने चाहिए।

असल में, बिहार सरकार की नीति में सबसे बड़ा खतरा इसके अमल के तरीकों पर जरूरी नियंत्रण न होने से उपजने वाली समस्याएं हैं। गाद प्रबंधन को गाद निकासी का कारोबार बनाने से रोकना सबसे बड़ा काम होगा। एक बार यह मान भी लिया जाए कि नदी की गाद सड़क, रेल और निर्माण के काम आ सकती है तो उसमें बाजार दिखाई देने लगेगा। फिर नदी से अधिक से अधिक गाद निकालने का आर्थिक आकर्षण पैदा होगा। नदी-विज्ञान पीछे और निर्माण सामग्री की मांग आगे हो जाएगी। इसलिए गाद की उपयोगिता तय करने से पहले उसकी मात्रा, गुणवत्ता, प्रदूषण की स्थिति, भू-तकनीकी प्रकृति और परिवहन लागत का आकलन जरूरी है। निकाली गई गाद कहीं दूसरी जगह नई पर्यावरणीय समस्या न पैदा करे, यह भी देखना होगा।

गंगा में यह सावधानी और जरूरी है। भागलपुर के आसपास गांगेय डॉल्फिन का संवेदनशील आवास है। यहां किसी भी बड़े पैमाने की ड्रेजिंग को केवल नौवहन या जलनिकासी के नजरिये से देखना पर्याप्त नहीं होगा। नदी की गहराई, धारा, तलछट, मछलियों और डॉल्फिन के आवास के बीच संबंध को समझना होगा। नदी की धारा बदलेगी तो तलछट का व्यवहार बदलेगा।

तलछट बदलेगी तो जलीय जीवों के आवास पर भी असर पड़ सकता है। ऊपर से गाद निकालकर नीचे की समस्या खत्म नहीं होती। नदी में गाद पानी के साथ चलती है। कहीं कम होती है, कहीं ज्यादा जमा होती है। इसलिए फरक्का से लेकर भागलपुर और उससे ऊपर तक नदी की तलछट-यात्रा को एक पूरे तंत्र की तरह देखना होगा।

बिहार की नई नीति इसलिए सिर्फ एक प्रशासनिक फैसला नहीं, नदी को देखने का एक अवसर भी है। अगर इसका अर्थ सिर्फ 'गाद निकालो' हुआ तो हम उसी पुरानी इंजीनियरिंग सोच को दोहराएंगे जिसमें नदी को नियंत्रित करने की कोशिश होती रही है। लेकिन अगर 'गाद प्रबंधन' का अर्थ सचमुच प्रबंधन हुआ तो शुरुआत गाद निकालने से नहीं, गाद को समझने से होगी। हर प्रमुख नदी और संवेदनशील हिस्से का नियमित 'सिडिमेंट बजट' तैयार होना चाहिए। नदी का तल कितना बदला? कहां कटाव बढ़ा? कहां जमाव हुआ? पिछले साल की ड्रेजिंग का क्या असर पड़ा? अगली बरसात में नदी का व्यवहार कैसा रहा? इन सबका सार्वजनिक रिकॉर्ड होना चाहिए।

नदी के आंकड़े भी नदी की तरह बदलते रहते हैं। इसलिए पुराने नक्शों और फाइलों के भरोसे नदी का भविष्य नहीं लिखा जा सकता। नदी को बचाना है तो उसकी कहानी मिटाकर नहीं, उसकी भाषा समझकर रास्ता बनाना होगा। ■

फोटो: गेटी इमेजेज

पुराने नक्शों और फाइलों के भरोसे नदी का भविष्य नहीं लिखा जा सकता। नदी को बचाना है तो उसकी कहानी मिटाकर नहीं, उसकी भाषा समझकर रास्ता बनाना होगा

गाद हमेशा दुश्मन नहीं होती। अगर गाद नदी की स्वाभाविक यात्रा का हिस्सा है तो उसे हटाने से पहले यह कौन तय करेगा कि कहां से कितनी गाद निकले और कहां उसे बहने दिया जाए?

Published Date 27 September, 2026 (Sunday), Posted at LPC Delhi RMS, Delhi-06, Posting Days Friday and Saturday

अयोध्या का सवा सौ साल पुराना श्री राम अस्पताल

इरादे ठीक हों तो बड़ा से बड़ा काम चुटकियों में हो जाता है, लाला श्री राम का यह काम इसका प्रमाण है

कृष्ण प्रताप सिंह

अयोध्या में राम पथ पर बने नए-नवेले राममंदिर से थोड़ी ही दूरी पर एक सवा सौ साल पुराना श्री राम अस्पताल हुआ करता है। अयोध्यावासी ही नहीं, देश के दूसरे हिस्सों से अयोध्या आने वाले आम लोग भी अचानक बीमार हो जाएं या कोई 'दैहिक ताप' (यानी व्याधि) उनके गले आ पड़े तो उससे निजात के लिए वे इसी अस्पताल का रुख करते और उनमें से ज्यादातर यह सोचकर खुश होते हैं कि राम की नगरी में उनका मंदिर ही नहीं उनके नाम का अस्पताल भी है।

दरअसल, वे समझते हैं कि इस अस्पताल का नामकरण भगवान राम के नाम पर हुआ है। इसलिए कई बार वे बहुत जिज्ञासु होकर यह जानने में भी दिलचस्पी जताते हैं कि सवा सौ साल पहले इसके निर्माण में कितना धन लगा होगा और कैसे जुटाया गया होगा? क्या वैसे ही जैसे नए राममंदिर के लिए जुटाया गया? उनमें से कई यह जानने में भी रुचि दिखाते हैं कि किसकी प्रेरणा से या किसकी मांग पर इसको श्रीराम का नाम दिया गया?

इस टिप्पणी में यह पढ़कर वे थोड़े निराश हो सकते हैं कि उनकी समझदारी के विपरीत इसके नाम के साथ जुड़ा 'श्री राम' शब्द भगवान राम के लिए नहीं है। वह तो इसके निर्माण की सोचने और उस पर आने वाला सारा खर्च उठाने वाले परोपकारी तालुकेदार लाला श्री राम के लिए है। और चूंकि इस खर्च की पाई-पाई लाला श्री राम ने ही भुगतान की थी, इसलिए इसके निर्माण लिए राममंदिर निर्माण की तर्ज पर धन जुटाने के प्रयत्नों का सवाल ही नहीं उठता। इसके बावजूद इसके निर्माण की कथा इतनी दिलचस्प है कि वे थोड़े निराश होने के बावजूद उसे जरूर पढ़ना चाहेंगे।

इस सिलसिले में एक दिलचस्प तथ्य शुरू में ही जान लेना चाहिए। यह कि तत्कालीन ब्रिटिश सत्ता द्वारा दी गई 'रायबहादुर' की उपाधि से जुड़कर लाला श्रीराम का नाम थोड़ा बड़ा होकर 'राय श्री राम बहादुर' हो गया था। फैजाबाद जिले के तत्कालीन गजेटियर में उनका इससे भी बड़ा 'राय श्री राम बहादुर आफ रसूलपुर' नाम लिखा हुआ है।

वह सुल्तानपुर की ओर अयोध्या से बीस-पच्चीस किलोमीटर दूर स्थित रसूलपुर तालुके के तालुकेदार तो थे ही, अपने वक्त के नामी वकील, समाजसेवी और परोपकारी भी थे।

कहते हैं कि परोपकारी के तौर पर उनके मन को यह बात बहुत सालती रहती थी कि अयोध्या के प्राचीन और पावन धर्मनगरी होने के बावजूद उसकी रज माथे लगाने के लिए दूर दूर से आने वाले श्रद्धालुओं, संतों, तीर्थयात्रियों, गरीबों, जरूरतमंदों और स्थानीय लोगों को किसी आपातकाल में बुनियादी इलाज भी नहीं मिल पाता और बीमारियों के शिकार हो जाएं तो स्वास्थ्य लाभ के लिए दर-दर भटकना पड़ता है।

बीसवीं शताब्दी के आरंभ में एक दिन उन्होंने इस स्थिति को बदलने की सोची और निस्वार्थ सोच के साथ एक ऐसे अस्पताल की स्थापना के प्रयासों में सक्रिय हो गए, जो मरीजों की निःशुल्क सेवा करे। चूंकि वे ऊंची पहुंच वाले संभ्रांत व्यक्ति थे, इसलिए उनको अंग्रेज अफसरों और शुभचिंतक राजाओं व तालुकेदारों का भरपूर सहयोग मिला और तत्कालीन फैजाबाद (अब अयोध्या) जिले के गजेटियर के अनुसार सन् 1900 से शुरू हुए उनके प्रयास दो साल में ही परवान चढ़ गए और 1902 में उनके द्वारा दी गई दान की रकम से ही इसके भवन का निर्माण पूरा हो गया। इस निर्माण में कितना धन लगा, फिलहाल, इसका विवरण नहीं मिलता, लेकिन गजेटियर में दर्ज है कि यह प्रथम श्रेणी का अस्पताल था, जो "रसूलपुर के राय श्री राम बहादुर द्वारा शहर को दान में दिया गया"।

कम दिलचस्प नहीं है अयोध्या के श्री राम चिकित्सालय के निर्माण के पीछे की कहानी

अयोध्या के हृदयस्थल में स्थित होने के कारण इस तक हर किसी की पहुंच सुगम थी और आज भी है। शुरू में यह जिला बोर्ड के अधीन संचालित होता था, लेकिन बाद में, मई, 1949 में संयुक्त प्रांत (अब उत्तर प्रदेश) की सरकार ने इसे अपने नियंत्रण में ले लिया और उसके बाद से यह सरकारी या कि राजकीय अस्पताल बन गया।

इसके भवन के मुख्य ब्लॉक की एक दीवार पर संगमरमर की पट्टिका पर अंग्रेजी में लिखा हुआ है : 'माननीय राय श्री राम बहादुर द्वारा अयोध्या के गरीबों के लिए निर्मित यह अस्पताल 5 नवंबर 1900 को शुरू किया गया। इसकी आधारशिला फैजाबाद मंडल के आयुक्त आईसीएस जे हूपर द्वारा रखी गई। 12 अप्रैल, 1902 को आगरा और अवध के संयुक्त प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर एचएच सर जेम्स डिग्स लाटूश, केसीएसआई ने इसको सार्वजनिक उपयोग के लिए खोला।' एक अन्य पट्टिका पर हिन्दी और उर्दू में भी यही बात लिखी हुई है।

> माननीय राय श्री राम बहादुर द्वारा अयोध्या के गरीबों के लिए निर्मित यह अस्पताल 5 नवंबर 1900 को शुरू किया गया। 12 अप्रैल 1902 को आगरा और अवध के संयुक्त प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर एचएच सर जेम्स डिग्स लाटूश, केसीएसआई ने इसको सार्वजनिक उपयोग के लिए खोला

आज की तारीख में इस अस्पताल में मरीजों के लिए स्वीकृत कुल बेड संख्या 151 है, हालांकि, सामान्य तौर पर 120 बेड ही एक्टिव रहते हैं। हां, गंभीर हालत वाले मरीजों के इलाज के लिए 12 बेड का आईसीयू भी है और नागरिकों की ओर से इसमें एक सुव्यवस्थित हार्ट केयर सेंटर (हृदय रोग विभाग) विकसित करने और बेड़ों की कल संख्या तीन सौ करने की मांग भी उठती रहती है।

इसके संस्थापक लाला श्री राम के निजी जीवन पर नजर डालें तो उनके पिता लाला मेवाराम अवध के तत्कालीन नवाब नसीरुद्दीन हैदर (1827-1837) के दोस्त भी थे और दीवान भी। नवाब ने विपरीत परिस्थितियों में भी बहादुरी और दृढ़ता न खोने वाले लाला मेवाराम को 'सलाबत जंग' की उपाधि भी दे रखी थी।

'सलाबत जंग' शासकों द्वारा युद्ध में दृढ़ता और बहादुरी का प्रदर्शन करने वाले नायकों को दी जाने वाली उपाधि थी, जिसको सन्नाम करने का श्रेय 18वीं शताब्दी के दक्कन और हैदराबाद के निजामों को दिया जाता है। उनके बाद मुगलों और अवध के नवाबों ने भी सैन्य कौशल, वफादारी व दृढ़ता के धनी अपने नायकों व जनरलों को यह उपाधि दी।

यहां यह भी जान लेना चाहिए कि फ़ारसी व अरबी भाषाओं में सलाबत-ए-जंग (या सलाबत जंग) का अर्थ है : युद्ध में दृढ़ रहने वाला। इस नाम की उपाधि सबसे ज्यादा तब प्रसिद्ध हुई, जब 13 फरवरी 1751 को दक्कन के सूबेदार मुजफ्फर जंग की हत्या के बाद, फ्रांसीसी कमांडर मार्क्विस डी बुसी ने हैदराबाद के पहले निजाम (निजाम-उल-मुल्क) के तीसरे बेटे मीर सईद मुहम्मद खान को नया निजाम बनाया और ताजपोशी के दौरान उन्हें कई अन्य बड़ी उपाधियों के साथ यह उपाधि भी दी।

फिर तो मीर सईद मुहम्मद खान को उनके असली नाम के बजाय 'सलाबत जंग' के नाम से ही जाना जाने लगा। बाद में मुगल सम्राट आलमगीर द्वितीय ने भी उनकी सत्ता को औपचारिक रूप से स्वीकार कर लिया और इससे भी बड़ी शाही उपाधि 'अमीर-उल-ममालिक' से सम्मानित किया।

बहरहाल, लाला श्री राम के पिता लाला मेवाराम ने लखनऊ में अपने खर्चे पर एक इमामबाड़ा भी बनवाया था, जिसके रखरखाव पर वे हर साल तीन लाख रुपए खर्च किया करते थे। नवाबों का दौर खत्म होने के बाद ब्रिटिश शासनकाल में भी उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा को कोई आंच नहीं आने दी थी। उनको फैजाबाद जिले के बीकापुर अंचल में रसूलपुर की तालुकदारी प्राप्त थी।

वह नहीं रहे और उनकी विरासत उनके बेटे लाला श्रीराम के हाथ आई और उन्होंने परोपकार की भावना से अयोध्या में इस अस्पताल का निर्माण करवाने की ठानी तो उसके पूरा हो जाने पर उसे उनका ही नाम दे दिया गया।

उनकी सामाजिक सक्रियताओं और सेवाओं के मद्देनजर लखनऊ में अमीनाबाद क्षेत्र की एक सड़क का नाम भी उनके ही नाम पर श्री राम रोड है। इस नामकरण का एक कारण यह भी बताया जाता है कि उनका लखनऊ के अपने समय के बेहद नामचीन वकीलों में शुमार था। उन्होंने लंबे समय तक लखनऊ में रहकर वहां के सामाजिक और प्रशासनिक कार्यों में सक्रिय भूमिका निभाई थी और एक बार 'इंपीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल' के सदस्य भी चुने गए थे। स्वाभाविक ही, इस सबसे उनका कद बहुत ऊंचा हो गया था और वकालत, जनहित व परोपकार के कार्यों में उनकी सक्रियता को भरपूर जनश्रद्धा और सम्मान प्राप्त था।

प्रसंगवश, अवध सूबे में 'रसूलपुर' नाम के एक से अधिक ऐतिहासिक क्षेत्र, तालुके या गांव रहे हैं। अयोध्या (पूर्व नाम फैजाबाद) जिले में ही तीन प्रमुख क्षेत्र 'रसूलपुर' नाम से जाने जाते रहे हैं। इनमें एक रसूलपुर टांडा परगने में स्थित था और रसूलपुर मुबारक़पुर नाम से जाना जाता था, जबकि दूसरा रसूलपुर किछौछा शरीफ के पास प्रसिद्ध सूफी संत मखदूम अशरफ़ जहांगीर सिमनानी की दरगाह की सीमा पर स्थित था।

लेकिन जैसा कि पहले बता आए हैं, लाला श्री राम जिस रसूलपुर के तालुकेदार थे, वह बीकापुर अंचल में स्थित था। उनके परिवार के पास फैजाबाद जिले के कई दूसरे गांवों और पट्टियों का मालिकाना हक भी था। ■

जब बंधक बना लिए गए वज़ीर-ए-आला

वाजिद अली शाह के दौर का हैरतअंगेज़ वाकया जब वसूल ली गई पचास हजार रुपयों की फिरौती भी

कृष्ण प्रताप सिंह

सत्ताओं के संघर्ष में दुर्दांत अपराधियों और बाहुबलियों के इस्तेमाल से खिलने वाले गुलों के आपने बहुत से वाकये पढ़े-सुने होंगे। लेकिन अवध के आखिरी नवाब वाजिद अली शाह के वक्त का यह वाकया इस मायने में अभूतपूर्व है कि इसमें चार बाहुबलियों ने उनके वजीर-ए-आला अमीनउद्दौला को राजधानी लखनऊ में ही दिनदहाड़े बंधक बनाकर पचास हजार रुपयों की फिरौती वसूल ली थी और वह तत्काल उनका कुछ भी बिगाड़ नहीं पाए थे।

यह हैरतअंगेज वारदात 13 फरवरी 1847 को वाजिद के गद्दी पर बैठने के दूसरे ही महीने आठ अप्रैल 1847 को हुई थी और इसके पीछे वजीर-ए-आला की कुर्सी पर नजर गड़ाए बैठे अमीनउद्दौला के प्रतिद्वंद्वी नवाब अली नकी खां थे। अली नकी खां वाजिद अली के ससुर थे और, जैसे भी बने, अमीनउद्दौला को नीचा दिखाकर उनकी जगह वजीर-ए-आला बन जाना चाहते थे।

एक दिन बदनीयती बेकाबू हो गई तो उन्होंने इस काम के लिए फजल अली नामक तब के कुख्यात बाहुबली की मदद ली और बदले में उसे मोटी रकम दी। सौदा हुआ कि फ़ज़ल अली मौका पाते ही अमीनउद्दौला को बंधक बना लेगा। फिर अली नकी खां की वजारत का दौर आयेगा तो उसकी बल्ले-बल्ले हो जाएगी।

अली नक़ी ख़ां मुग़ल बादशाह शाहआलम द्वितीय के पड़पोते थे, जिसके चलते अवध दरबार में उनका बड़ा रसूख था। अख्तर महल नाम से जानी जाने वाली उनकी बेटी वाजिद से ब्याही थी, भतीजी बेगम आलम आरा उर्फ खास महल वाजिद की पहली आधिकारिक बीवी थी।

अली नकी की महत्वाकांक्षाएं इतनी बड़ी थीं कि उन्हें पूरी करने के लिए गुपचुप ढंग से अमीनउद्दौला को राह से हटाने का काम फ़ज़ल अली को सौंपा। आठ अप्रैल, 1847 को जब अमीनउद्दौला दो सहायकों और एक सेवक के साथ लखनऊ के गोलागंज स्थित मलिका-ए-जमानी के इमामबाड़े के पास से गुजर रहे थे, फ़ज़ल ने तफज्जुल हुसैन, हैदर खान और अली अहमद नामक तीन भरोसेमंद खूंखार साथियों के साथ बग्घी रोककर सहायकों और सेवक समेत उन्हें कब्जे में ले लिया। खबर फैलते ही वाजिद की सारी हुकूमत हिलकर रह गई। इस कारण कुछ ज्यादा ही कि उस वक्त तक अंग्रेजों ने उसका ज्यादातर इकबाल छीन लिया था।

बहरहाल, इतिहासकारों ने लिखा है कि जब तक अमीनुद्दौला यह समझ पाते कि फ़ज़ल अली और उसके साथियों ने इस तरह बदतमीजी से उनको बंधक बनाने का दुस्साहस क्यों किया है, चारों ने उनके सेवक को बुरी तरह घायल कर डाला। सेवक ने हैदर खान पर तलवार का जोरदार वार भी किया, लेकिन वह उसे तफज्जुल के साथ बग्घी में घुसने और अमीनउद्दौला को बेबस कर देने से नहीं रोक पाया।

इससे हतप्रभ होने के बावजूद अमीनउद्दौला ने हैदर का तलवार वाला दाहिना हाथ पकड़कर उसे बांईं तरफ धकेला तो जरूर लेकिन घबराहट में संतुलन खोकर उसी पर गिर पड़े। हैदर की सहायता को तफज्जुल आया तो उन्होंने उसे बांयें हाथ से पकड़ लिया। लेकिन तीसरे बाहुबली ने उनके उसी हाथ पर तलवार मार दी। संभलते-संभलते उन्होंने देखा कि उनके दोनों सहायक भी घायल हो चुके हैं और उनमें से एक मदद के लिए चिल्ला रहा है- 'बचाओ-बचाओ, गुंडे वजीर-ए-आला को मार रहे हैं।'

इसी बीच फजल और उसके साथियों ने अमीनुद्दौला को अपने घेरे में ले लिया और भीड़ को धमकाने लगे कि कोई आड़े आया तो उसे भी नहीं बख्शेंगे।

> अमीनउद्दौला हुकूमत की प्रतिष्ठा कम करने के इल्ज़ाम में अपनी बर्खास्तगी से बहुत विचलित हुए। इससे भी ज्यादा विचलित अली नकी खां के उत्तराधिकारी बन जाने से हुए

आगे क्या हुआ, इसे मुंशी केवल किशोर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'नादिर-उल-अस्र' में कुछ इस तरह दर्ज किया है : खबर पाकर अंग्रेज रेजीडेंट रिचमंड अपने सहायक लेफ्टीनेंट बर्ड के साथ चंद मिनटों में ही मौका-ए-वारदात पर पहुंचा। पहुंचने से पहले ही उसने छावनी को आदेश भी भिजवा दिया था कि दो बंदूकों सहित एक पलटन अपने साज-सामान सहित फौरन वहां पहुंच जाए।

लेकिन फ़ज़ल अली देर तक उससे भी अकड़कर ही बात करता रहा। उसके साथियों में से एक ने तो यहां तक कह दिया कि-अजी, रेजीडेंट साहब, इस राज में अंधेरगर्दी मची हुई है। नचनियों, गवैयों और किन्नरों के आगे दरबार में अच्छे आदमियों की कदर नहीं है। इस 'महा-उल-महाम' (वजीर-ए-आला) ने, और तो और, हमारी नौकरी ही छीन ली है।

अनंतर, रेजीडेंट की मनाने की तमाम कोशिशों के बावजूद फ़ज़ल अली ने उससे दो टूक कह दिया कि हम अमीनउद्दौला को तभी छोड़ेंगे, जब हमें पचास हजार रुपये की फिरौती दी जाए और बिना कोई नुक़सान पहुंचाये ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा प्रशासित कानपुर क्षेत्र में चले जाने दिया जाए। लेकिन रेजीडेंट ने एक सीमा के बाद उसके आगे झुकने से मना कर दिया।

यह सब चल ही रहा था कि अमीनउद्दौला के घबराये परिजन उनकी जान बचाने को हाथियों पर पचास हजार रुपये के सिक्के लादकर फिरौती देने वहां आ पहुंचे। तब रेजीडेन्ट गोरी पल्टन की मदद से हाथियों और रुपयों के साथ फ़ज़ल अली एवं उसके साथियों को रेजीडेंसी ले आया और नवाब को सारी जानकारी दी। लेकिन नवाब ने चारों की गिरफ्तारी के लिए सिपाही भेजे तो अपने वायदे का हवाला देकर सिपाहियों को उनकी गिरफ्तारियां नहीं करने दीं।

अब तक जो कुछ हुआ था, उससे विचलित अमीनउद्दौला ने भी नवाब को पत्र लिखकर याचना कर डाली कि फ़ज़ल अली और उसके साथियों से कोई दुर्व्यवहार न किया जाए। उस वक्त तक तो वैसा ही किया गया, लेकिन बाद में चारों पर मुकदमे चले और जज द्वारा तफज्जुल हुसैन, हैदर खान एवं फजल अली को उम्रकैद की सजा सुना दी गई, जबकि अली अहमद को अच्छे चाल-चलन की शर्त पर छोड़ दिया गया।

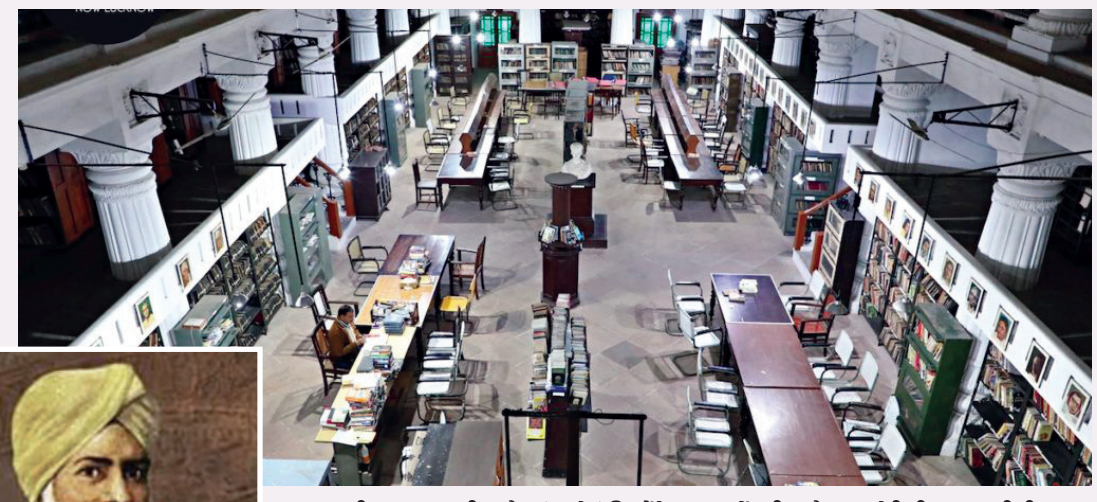

वज़ीर-ए-आला अमीनउद्दौला (इनसेट) जिन्होंने लखनऊ में अमीनउद्दौला लाइब्रेरी की स्थापना की थी

जहां तक इस बारे कांड के सूत्रधार अली नकी खां की बात है, वे इस मायने में अपने मकसद में कामयाब हो गए कि फ़ज़ल अली ने उनकी पोल नहीं खोली और थोड़े ही दिनों बाद वाजिद ने अमीनउद्दौला पर हुकूमत की प्रतिष्ठा गिराने, लगान वसूली में कोताही बरतने, चुस्त-दुरुस्त न रहने और नियुक्तियों में रिश्वतखोरी करने आदि के आरोप लगाकर वजीर-ए-आला पद से बर्खास्त कर अली नकी खां को नियुक्त कर दिया।

इतिहासकार बताते हैं कि अमीनउद्दौला ने वाजिद के राजकाज संभालते समय ही अपने इस्तीफे की पेशकश की थी, लेकिन तब उसे स्वीकार नहीं किया गया था। वजीर-ए-आला रहते उन्होंने लखनऊ का इतिहासप्रसिद्ध अमीनाबाद बाजार बसाया था और बाद में उनके नाम पर प्रतिष्ठित अमीनउद्दौला लाइब्रेरी भी बनी थी। इस सबके बावजूद व हुकूमत की प्रतिष्ठा कम करने के इल्ज़ाम में अपनी बर्खास्तगी से वह बहुत विचलित हुए। इससे भी ज्यादा विचलित अली नकी खां के अपना उत्तराधिकारी बन जाने से हुए।

दूसरी ओर फजल अली को उम्रकैद पर जेल भेजा गया तो कुछ ही दिनों बाद वह एक और साजिश रचकर (कुछ इतिहासकारों के अनुसार अली नकी खां की गुपचुप मदद से) वहां से भाग निकला और बहराइच जिले में नानपारा पहुंचा, जहां उसे राजा मुनव्वर अली खां का संरक्षण मिला। 1850 में राजा का देहांत हुआ तो फजल ने उनकी बेगमों के सत्ता-संघर्ष में भी बड़ी भूमिका निभाई। छोटी बेगम ने राजपाट हथियाने के प्रयास आरंभ किये और वाजिद की मां 'मलिका-ए-किश्वर' का समर्थन प्राप्त कर लिया, तो खीझी बड़ी बेगम ने फजल अली को अपनी फौज का कमांडर बना दिया।

अवध की नवाबी सेना ने उन्हें बेदखल करने के लिए बिसवां के तालुकेदार नवाब अली की सेना के साथ मिलकर धावा बोला तो फजल अली के करारे जवाब ने उसे भारी नुकसान पहुंचाया और अपना-सा मुंह लेकर लौट जाने पर मजबूर कर दिया। यह और बात है कि बाद में बड़ी बेगम को इस दुस्साहस की और भी बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। अपमानित नवाबी सेना थोड़े ही दिनों बाद बड़े दल-बल के साथ आई और उन्हें बेदखल कर दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर कर दिया।

राज्याश्रय नहीं रह गया तो फजल के सितारे भी गर्दिश में आ गए। वह डकैतियां डालने लगा। उसके गिरोह ने कानपुर में नवाब मुहम्मद तकी खां की कोठी तो लूटी ही, लखनऊ के करोड़पति सर्राफ पन्नालाल चौधरी, लाला हरप्रसाद तथा मलिका-ए-आलम के दौलतखानों पर भी हाथ मारे। लेकिन बाद में गोंडा की उतरौला रियासत में वापस आ गया और तराई स्थित जरवा नामक स्थान पर एक मिट्टी की गढ़ी बनवाकर रहने लगा।

1856 में अंग्रेजों ने वाजिद अली शाह को अपदस्थ कर अवध की सत्ता खुद संभाल ली और सात फरवरी को रेजीडेंट कर्नल स्लीमन 'आला मालिक' बन गए तो भी फजल ने रईसों व उनकी हवेलियों को निशाना बनाना, साथ ही उनका भयादोहन करना बन्द नहीं किया। स्लीमन के निर्देश पर गोंडा के जिलाधीश कर्नल ब्वायलू ने उसकी गढ़ी के बाहर घेरा डाल दिया तो पहले तो उसने गढ़ी के भीतर से ही गोली चलाकर कर्नल ब्वायलू की हत्या कर दी और उनका सिर काटकर घने जंगलों में उठा ले गया। जहां यह मुठभेड़ हुई, वहां स्थित बाग को अब 'मुड़कटवा बाग' कहते हैं।

प्रसंगवश, कर्नल ब्वायलू नवसृजित गोंडा जिले के पहले जिलाधीश थे और उनकी हत्या ईस्ट इंडिया कम्पनी की सत्ता को खुली चुनौती थी। इस चुनौती को स्वीकार कर कुछ ही महीनों बाद लेफ्टीनेंट क्लार्क ने भारी दल-बल के साथ फजल को फिर आ घेरा और लम्बी मुठभेड़ में मार गिराया। ■